कृष्णदास संस्कृत सीरीज ४२

लघुजातकम्

सयुक्ति-सोदाहरण-सोपपत्ति-
'तत्त्वप्रभा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः
आचार्य श्री पं० लषणलाल झा

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

कृष्णदास आयुर्वेद सीरीज

४२

श्रीमद्वराहमिहिराचार्यविरचितम्

लघुजातकम्

सयुक्ति-सोदाहरण-सोपपत्ति-

'तत्त्वप्रभा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः

आचार्य श्री पं० लषणलाल झा

गणित-फलित-ज्योतिषाचार्य-साहित्य-वेदान्ताचार्य-सांख्ययोग-शास्त्री

वैद्यनाथधामस्थ-वैद्यनाथ-कमलकुमारी-संस्कृतविद्यालय-प्रधानाध्यापकः

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : द्वितीय, सन् २००४
मूल्य : रु० ३५.००
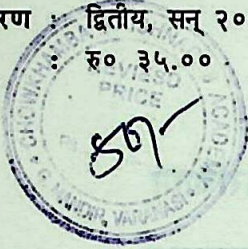
पुस्तक प्रकाशक एवं वितरक
पोस्ट बॉक्स नं० १११८, के. ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
वाराणसी - २२१००१ (भारत)
फोन : २३३५०२०(आफिस), २३३४०३२ (आवास)
e-mail : cssoffice@satyam.net.in

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के. ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पोस्ट बॉक्स नं० १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) २३३३४५८, आवास : २३३५०२०, २३३४०३२

KRISHNADAS AYURVEDA SERIES
42

LAGHUJĀTAKAM

OF

VARĀHAMIHIRĀCĀRYA

Edited With
'Tatvaprabhā' Sanskrit-Hindi Commentary

By

Pt. Lashanlal Jha
Jyotiṣa-Sāhitya-Vedāntācārya

CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY, VARANASI

भूमिका

यह सर्वविदित है कि 'लघुजातक' ग्रन्थ के रचयिता दैवज्ञसम्राट् त्रिस्कन्ध-ज्योतिषशास्त्र के तत्त्वज्ञ विद्वच्छिरोमणि स्वनामधन्य वराहमिहिराचार्य हैं। उज्जयिनी नगर निवासी इनके पिता का नाम पण्डितप्रवर आदित्यदास था।

इन्होंने अपने पिता से विद्या प्राप्त कर कपित्थ (उज्जैन के पास कायथा) ग्राम में भगवान् श्री सूर्यदेव की आराधना से विशेष ज्ञानोपार्जन किया। आध्यात्मिक शक्ति के आधार पर अल्प काल में ही ये भारत के प्रसिद्ध ज्योतिषी बनकर सर्वत्र अपनी कीर्तिलता को प्रसार करने में सफल हुये। डा० कर्म के अनुसार वराहमिहिर का जन्मकाल ५०५ ई० और निधनकाल ५८७ ई० माना गया है। इनके पुत्र पृथुयशस् द्वारा लिखित 'षट्पञ्चाशिका' नामक ग्रन्थ उपलब्ध है।

ग्रन्थकार की अभिरुचि गणित-ज्योतिष की अपेक्षा फलित-ज्योतिष में अधिक थी। गणित में इनका केवल एक 'पञ्चसिद्धान्तिका' नामक ग्रन्थ उपलब्ध है किन्तु फलित में बृहत्संहिता, बृहज्जातक, लघुसंहिता, लघुजातक और योगमाला नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

लघुजातक के द्वितीय श्लोक में ग्रन्थकार ने बताया है कि मैंने पहले अनेक छन्दों में होराशास्त्र (बृहज्जातक) बनाया, बाद में उसका सार-तत्त्व लेकर आर्याछन्द में यह ग्रन्थ बनाता हूँ। आचार्य का यह कथन 'लघुजातक' की विशेषता सिद्ध करता है। दूध का सार मक्खन या दही का सार घृत निकाल लेने पर उनके सामने दूध दही का महत्त्व जिस तरह गौण हो जाता है उसी तरह होराशास्त्र प्रस्तुत लघुजातक की अपेक्षा गौण है। सारवस्तु की मात्रा स्वाभाविक न्यून हुआ करती है अतः ग्रन्थ का 'लघु-जातक' नामकरण उचित प्रतीत होता है।

इस ग्रन्थ में जन्मपत्र सम्बन्धी सभी विचार गागर में सागर के समान भरे पड़े हैं। जीव की गर्भस्थिति से लेकर निधन-पर्यन्त की सारी परिस्थितियों के शुभाशुभ फलादेश में लघुजातक का स्थान सर्वोत्तम है।

जन्मपत्र के आधार पर जातक की पूर्वापर-जन्म की स्थिति-ज्ञानार्थ विलक्षण रीति इस ग्रन्थ में प्रतिपादित है। स्त्रीजातकाध्याय में स्त्रियों के लिये विशेष फलादेश और नष्टजातकाध्याय में नष्टजन्मपत्र बनाने की

विलक्षण विधि है। अतः ग्रन्थकार ने अपनी व्यापक दृष्टि से मानवसमाज के घोरान्धकाराच्छन्न जीवन को प्रकाशित करने हेतु यह लघुप्रदीप रूप ग्रन्थ रचकर विश्व का महान् श्रेय साधन किया है।

इस पुस्तक में जो १६ अध्याय हैं, उनके नाम से ही विषयबोध स्पष्ट हो जाता है अतः विशेष विवरण देना मैं उचित नहीं समझता।

वराहमिहिर के ग्रन्थों पर भट्टोत्पल की संस्कृत टीका प्रसिद्ध है। उस के आधार पर हिन्दी टीका भी उपलब्ध है। अध्यापन-काल में कतिपय स्थानों पर सन्देह होने से मुझे उन टीकाओं को पढ़ने का अवसर मिला था, उस क्रम में टीकाकारों के परस्पर विरोधी विचार दृष्टिगोचर हुये। इसके परिष्कार तथा समन्वय के विचार ने ही मुझे एक नयी टीका लिखने के लिये प्रेरित किया एवं 'कृष्णदास अकादमी वाराणसी' के संस्थापक महोदय के आग्रह ने मेरी भावना को मूर्त्तरूप प्रदान करने में उत्साहित किया।

टीका में गूढ़ रहस्यों को स्पष्ट किया गया है। युक्ति, उपपत्ति, उदाहरण, परिवर्द्धन एवं विशेष समीक्षा से युक्त यह संस्कृत-हिन्दी टीका सर्वसाधारण-जनोपयोगी बनायी गयी है। जो विषय ग्रन्थ में सूक्ष्म रूप से प्रतिपादित हैं, उन्हें स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। समीक्षा में यत्रतत्र टीकाकारों के विचारों पर उचित प्रकाश डाला गया है। तदर्थ विशेष रूप से इस ग्रन्थ के ६, ७, ९, १०, ११, १२, १३, १४, और १६ वाँ अध्याय द्रष्टव्य हैं।

छात्रों के लिये प्रत्येक श्लोक की सरल संस्कृत टीका लिखी गयी है। जिसके अवलोकन मात्र से श्लोकों के यथार्थ भाव स्पष्ट हो जायँगे।

यह ग्रन्थ छोटा होने पर भी अधिक उपादेय है। सम्पूर्ण ग्रन्थ पढ़ने पर इसकी विशेषता ज्ञात हो सकती है। अतः पाठकों से मेरा नम्र निवेदन है कि इसे एक बार आद्यन्त पढ़ने की कृपा करें और टीका में जहाँ भ्रमवश त्रुटि हो उसे सूचित कर मुझे अनुगृहीत करें।

मेरे इस प्रयास से यदि पाठकों को सौलभ्य तथा साधारण-जन-समाज का थोड़ा भी कल्याण संभव हुआ तो मैं अपने श्रम को सफल समझूँगा।

वैशाखी पूर्णिमा
वि० सं० २०४०

विनीत—
—श्री लषणलाल झा

विषय-सूची

विषयाः पृष्ठाङ्काः

ग्रहभेदाध्यायः

ग्रहमैत्रीविवेकाध्यायः

विषयाः	पृष्ठाङ्काः

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
अरिष्टभङ्गाध्यायः	
गुरुकृदरिष्टभङ्गयोगः	५१
लग्नेशकृदरिष्टभङ्गयोगः	,,
चन्द्रकृतरक्षायोगः	,,
षष्ठस्थचन्द्रापवादः	५२
षष्ठाष्टमस्थचन्द्रारिष्टभंगयोगः	,,
सर्वारिष्टभंगयोगाः	५३
राहुकृदरिष्टभंगयोगाः	५४
चन्द्रकृदरिष्टभंगयोगः	५४
अष्टमग्रहाधीननिधनप्रकार	५६
आयुर्दायाध्यायः	
ग्रहाणामायुसाधनम्	५७
लग्नायुःसाधनम्	५८
विशेषसंस्कारः	५९
चक्रोत्तरार्धस्थग्रहाणां संस्कारः	६०
दशान्तर्दशाध्यायः	
दशाप्रमाणम्	६१
दशाक्रमः	,,
शुभाशुभदशाज्ञानम्	,,
शुभाशुभलग्नदशाज्ञानम्	६२
अन्तर्दशाविभागः	,,
अन्तर्दशासाधनम्	६४
अन्तर्दशाविचार	६५
रविदशा में अन्तर्दशा विभाग	६६
प्रत्यन्तर्दशा आदि साधन	६७

विषयाः | पृष्ठाङ्काः

विषयाः	पृष्ठाङ्काः

विषयाः पृष्ठाङ्काः

॥ श्रीः ॥

लघुजातकम्

सयुक्तिक-सोदाहरण-सोपपत्ति-

'तत्त्वप्रभा' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्

अथ राशिप्रभेदाध्यायः

मङ्गलाचरणम्—

यस्योदयास्तसमये सुरमुकुटनिघृष्टचरणकमलोऽपि ।
कुरुतेऽञ्जलिं त्रिनेत्रः स जयति धाम्नां निधिः सूर्यः ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—

शुभ्रां सत्त्वगुणोपेतां जाड्यहन्त्रीं सुबुद्धिदाम् ।
प्रसन्नां शंकरीं देवीं शारदां समुपास्महे ॥
वराहमिहिराचार्यैः कृतं यल्लघुजातकम् ।
तस्य तत्त्वप्रभां टीकां करोम्यल्पधियां मुदे ॥

यस्य, उदयास्तसमये=उदयेऽस्तकाले च, सुरमुकुटनिघृष्टचरण-कमलः=देवमौलिघर्षितपादपद्मः, त्रिनेत्रः=शिवः, अपि, अञ्जलिं=नमस्कारं, कुरुते=करोति, स=प्रसिद्धः धाम्नां=किरणानां, निधिः=आलयः, सूर्यः=भास्करः, जयति=सर्वोत्कर्षेण वर्तते ।

हिन्दी—जिसके उदय और अस्तकाल में देवताओं के मुकुट से घर्षित चरणकमल वाले भगवान् शंकर भी नमस्कार करते हैं, वह प्रकाशपुञ्ज सूर्य विश्वकल्याणार्थ विद्यमान हैं ॥ १ ॥

विशेष—वेदों में सूर्य को विश्व की आत्मा, सर्वदेवमय, प्रेरक, सृष्टि-स्थिति-लय-समर्थ और सभी देवताओं का मूल कहा गया है। भगवान् सूर्य ज्योतिष शास्त्र के प्रधान प्रवर्तक हैं अतः ग्रन्थकार ने अपने ग्रन्थों के मङ्गलाचरण में सर्वत्र सूर्य की ही प्रार्थना की है। योगदर्शन में सूर्य की आराधना से भुवन का ज्ञान बताया है। सूर्य की आराधना से आरोग्य, वेद-वेदाङ्गों का ज्ञान, दीर्घायु, दिव्य दृष्टि, अन्तर्बाह्य

जगत का पदार्थ ज्ञान, चतुंदशभुवनों का स्वरूपादि विज्ञान, ऐहिक और पारमार्थिक सुख, ग्रहोपग्रह तारा प्रभृति का पूर्ण विवेक एवं आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है। 'सृग् गतौ वा षू प्रेरणे धातु से क्यप् प्रत्यय करने पर सूर्य शब्द बनता है। सुवति कर्मणि लोकं प्रेरयति, वा सूते सर्वं जगत्, वा सरति आकाशे वा स्वीकरणात्' इत्यादि व्युत्पत्ति से सूर्य की विशेषता स्पष्ट होती है। जीवन के लिये आक्सीजन प्रदान करने वाला सूर्य ही है। अतः उनकी उपासना उचित है।

ग्रन्थनिर्माणविधिः—

होराशास्त्रं वृत्तैर्मया निबद्धं निरीक्ष्य शास्त्राणि।
यत्तस्याप्यार्याभिः सारमहं सम्प्रवक्ष्यामि ॥२॥

सं०—शास्त्राणि=ऋषिप्रणीतान्यन्यानि शास्त्राणि, निरीक्ष्य=अवलोक्य, वृत्तैः=नानाच्छन्दोभिः, होराशास्त्रं=वृहज्जातकग्रन्थं, मया = वराहमिहिराचार्येण, यत्, निबद्धं=रचितम्, तस्य, सारं=तत्त्वं, अहं आर्याभिः= आर्यावृत्तैः, सम्प्रवक्ष्यामि=कथयिष्यामि ॥ २ ॥

हिन्दी—आचार्य कहते हैं—जो मैं अनेक मुनिप्रणीत ग्रन्थों को देखकर पहले अनेक छन्दों में होरा शास्त्र याने वृहज्जातक ग्रन्थ को बनाया था अब उसका सारांश आर्याच्छन्द में कहता हूँ ॥ २ ॥

गन्थप्रयोजनम्—

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाऽशुभं तस्य कर्मणः पक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव ॥३॥

सं०—अन्यजन्मनि=पूर्वजन्मनि, शुभाशुभं=पुण्यपापात्मकं कर्म, यद् उपचितम्=अर्जितं, (जीवानामस्ति), तस्य कर्मणः, पक्तिम्=परिणामं, एतत् शास्त्रं=होराशास्त्रं, व्यञ्जयति=प्रकाशयति, यथा, तमसि=अन्धकारे, द्रव्याणि=वस्तूनि, दीपः व्यञ्जयति तद्वत् इव ॥ ३ ॥

हिन्दी—अन्धकार में जिस तरह दीपक वस्तुओं को प्रकाशित करता है उसी तरह यह होराशास्त्र (ज्योतिष) प्रत्येक जीव को पूर्व जन्मार्जित शुभ या अशुभ कर्मों के परिणामों को बताता है अर्थात् कब किस तरह का सुख या दुःख जीवन में होगा उसे प्रकट करता है ॥ ३ ॥

विशेष—पूर्वजन्मार्जित कर्मानुसार शुभाशुभ फलों को देने के लिये जीवों को जो पकड़े वह ग्रह है। प्रत्येक प्राणी की सारी जीवन की घटनायें जन्मकालिक कुण्डली स्थित ग्रहाधीन होती हैं और उनका ज्ञान ज्योतिष शास्त्र से ही होता है, अतः आचार्य का कथन युक्तियुक्त है।

सप्रयोजनकालपुरुषाङ्गविभागः—

शीर्षमुखबाहुहृदयोदराणि कटिबस्तिगुह्यसंज्ञानि ।
ऊरू जानू जंघे चरणाविति राशयोऽजाद्याः ॥४॥

कालनरस्यावयवान् पुरुषाणां चिन्तयेत्प्रसवकाले ।
सदसद्ग्रहसंयोगात् पुष्टाः सोपद्रवास्ते च ॥५॥

सं०—कालपुरुषस्य अजाद्याः=मेषादयो द्वादश राशयः, शीर्ष-मुख-बाहू-हृदयोदरादीन्यङ्गानि क्रमेण भवन्ति । पुरुषाणां=जीवानां, प्रसवकाले=जन्म-काले, कालनरस्य=कालपुरुषस्य, अवयवान्=अङ्गानि, चिन्तयेत्=विचार-येत् । तेऽवयवाः, सद्ग्रहसंयोगात्=शुभग्रहयोगात्, पुष्टाः=सबलाः व्रणादि-रहिताः, असद्ग्रहयोगात्=पापग्रहयोगात्, सोपद्रवाः=व्रणाङ्गवैकल्यरोगादि-रूपोपद्रवसहिताः, च भवन्तीत्यर्थः ॥ ४–५ ॥

हिन्दी—कालपुरुष के मेषादि द्वादश राशियाँ शीर्ष मुखादि के क्रम से अङ्ग हैं, जैसे मेष शिर, वृष मुख, मिथुन भुजायें, कर्क हृदय, सिंह उदर, कन्या कमर, तुला वस्ति (नाभि के निचला भाग), वृश्चिक गुह्य (इन्द्रिय, एवं गुदा), धनु ऊरुद्वय (जंघा), मकर घुटना, कुम्भ जंघा (ऐड़ी से घुटना तक) और मीन राशि चरण (पैर) हैं ॥ ४ ॥

जीवों के जन्मकाल में कालपुरुषाङ्ग विभाग का विचार करना चाहिये । जिन अंगों में शुभ ग्रह हों वे बलयुक्त और जिनमें पाप ग्रह पड़े हों वे निर्बल होते हैं । शुभ और पाप दोनों होने से मध्यम फल होता है ॥ ५ ॥

युक्ति—कालो हि सर्वेश्वरः, कालो विभुः, इत्यादि श्रुतियों से ब्रह्मवाचक काल शब्द है । यह मूर्त्त और अमूर्त्त अर्थात् स्थूल-सूक्ष्म के भेद से द्विविध है । स्थूल-काल जागतिक व्यवहार का हेतु है । इस भाव को स्पष्ट करने के लिए कालपुरुष कहा गया है । पुरुष का अर्थ साकार और निराकार भी है, 'सर्वासुपूर्षुशेते' इस व्युत्पत्ति से सभी जीवों के शरीर रूप पुर में शयन करने वाला पुरुष सर्वव्यापी सिद्ध होता है तथा सांख्य दर्शन के अनुसार आत्मावाचक पुरुष है । साकार अर्थ में अवयव धारी पुरुष है । यहाँ कालरूप पुरुष विग्रहवान् प्रत्यक्ष देवता भगवान् सूर्य हैं । सूर्य के बिना व्यावहारिक काल का ज्ञान होना संभव नहीं है अतः अगस्त्योक्त आदित्यहृदय में सूर्य को कालस्वरूप कहा गया है ।

भगवान् सूर्य की द्वादश कला ही ज्योतिष की द्वादश राशियाँ हैं । उन कलाओं में अनन्त शक्तियाँ हैं जो रश्मि रूप से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के कार्य सम्पादन करती रहती

हैं। प्राक्तन संस्कारवश जन्म समय में जातक का जिस किरण से सम्बन्ध होता है उसके अनुसार उसका जीवन बनता है। ज्योतिष शास्त्र में उस रश्मि के शुभाशुभ फल के ज्ञानार्थ जन्म कुण्डली बनाने की विधि है। तदनुसार जीवों का त्रैकालिक शुभाशुभ फलादेश किया गया है। यह विशेषता ज्योतिष में ही है, अतः इसे महर्षियों ने वेद का प्रधान अंग नेत्र स्वीकार किया है। जन्मकालिक भचक्रानुसार जातक का स्वरूप होता है इस हेतु काल पुरुष का अंगविभाग द्वादश विध है। पुराणों में दिव्य विग्रह-धारी के बारह अंग, द्वादश नाम तथा द्वादशाक्षर मंत्रादि प्रसिद्ध हैं। इसलिए काल पुरुष का अंगविभाग युक्तियुक्त है। कोष में 'जंघे बाहू शिरोमध्यं षडङ्गमिदमुच्यते' इसके द्वारा षडङ्ग का वर्णन, वेद का षडङ्ग तथा न्यास में षडङ्गन्यास आदि की प्रसिद्धि होने से व्यवहार में अंग शब्द से छह का ग्रहण होता है। यह व्यावहारिक और पारमार्थिक भेद से मानना चाहिये।

जातक के जन्मसमय शुभयुक्त अंग सबल और पापयुक्त अंग निर्बल होना उचित ही है। यहाँ यह विचारना है कि केवल चन्द्रमा एक राशि में सवा दो दिन रहता है अन्य ग्रह एक राशि में बहुत दिनों तक रहते हैं। इस स्थिति में अंगों का विचार स्थूल समझा जायगा। शनि तो ढाई वर्ष एक राशि में रहता है तब तो उस राशि सम्बन्धि अंग सभी का निर्बल ही कहा जायगा। इसलिए सूक्ष्म कुण्डली याने नवांश, द्वादशांश, त्रिंशांश एवं षष्ठ्यंशादि कुण्डली बनाकर उनके अनुसार फलादेश सूक्ष्म होगा। अंगों के विचारों में शुभ और पाप की दृष्टि भी देखनी चाहिए।

राशिवर्णज्ञानम्—

अरुणसितहरितपाटलपांडुविचित्राः सितेतरपिशंगौ।
पिङ्गलकर्बुरबभ्रुकमलिना रुचयो यथासंख्यम् ॥६॥

सं०—मेषादीनां राशीनां, यथासंख्यम्=क्रमेण, अरुणः=रक्तः, सितः=श्वेतः, हरितः=हरितवर्णः, पाटलः=ईषद्रक्तः, पाण्डुः=धूम्रवर्णः, विचित्रः=विचित्रवर्णः, सितेतरः=कृष्णवर्णः, पिशङ्गः=कनकवर्णः, पिङ्गलः=रक्तपीत-मिश्रितवर्णः, कर्बुरः=धूम्राभः, बभ्रुः=श्यामवर्णः, मलिनः=स्वच्छरहितः, एताः, रुचयः=वर्णाः, भवन्ति ॥ ६ ॥

हिन्दी—मेषादि राशियों के अरुण सितादि के क्रम से वर्ण होते हैं। अर्थात् मेष रक्त, वृष श्वेत, मिथुन हरा, कर्क श्वेतरक्तमिश्रित, सिंह पीला, कन्या अनेक वर्ण, तुला काला, वृश्चिक सुवर्णसदृश, धनु भूरारंग, मकर धूम्रवर्णः, कुम्भ-श्यामवर्ण और मीन का मलिन वर्ण होता है ॥ ६ ॥

विशेष—इसका प्रयोजन वर्णज्ञान में होता है।

युक्ति—आकाश में सूर्य के भ्रमण पथ का नाम क्रान्तिवृत्त है, उसके समान द्वादश विभाग मेषादि द्वादश राशियाँ हैं। सूर्य किरणवश जो भाग जिस वर्ण का रूप धारण करता है उसका वर्णन महर्षियों ने उपर्युक्त रीति से किया है ॥ ६ ॥

राशिसंज्ञादिकथनम्—

पुंस्त्री-क्रूराऽक्रूरौ चर-स्थिर-द्विस्वभावसंज्ञाश्च ।
अजवृषमिथुनकुलीराः पंचमनवमैः सहैन्द्रयाद्याः ॥७॥

सं०—मेषादयो द्वादशराशयः क्रमेण पुं-स्त्री, क्रूराक्रूर, चर-स्थिर, द्वि-स्वभाव संज्ञकाश्च भवन्ति। अजवृषमिथुनकुलीराः=मेषवृषमिथुनकर्कटाः, राशयः, स्व स्व पंचमनवमैः, सह, इन्द्राद्याः=पूर्वाद्याः, दिग्विभागानामधिपाः भवन्तीत्यर्थः ॥ ७ ॥

हिन्दी— मेषादि द्वादश राशि क्रम से पुरुष, स्त्री, क्रूर, सौम्य, चर, स्थिर एवं द्विस्वभाव संज्ञक हैं अर्थात् मेष-पुरुष, क्रूर और चरसंज्ञक, वृष-स्त्री, सौम्य, और स्थिरसंज्ञक, मिथुन-पुरुष, क्रूर एवं द्विस्वभावसंज्ञक हैं, इसी तरह आगे समझना चाहिये। मेष, वृष, मिथुन और कर्क राशि अपने से पंचम, नवम राशि के साथ पूर्वादि दिशाओं के अधिपति होते हैं। भाव यह है कि मेष-सिंह-धनु पूर्व का, वृष-कन्या-मकर दक्षिण का, मिथुन तुला-कुम्भ पश्चिम का और कर्क, वृश्चिक-मीन उत्तर का स्वामी है ॥ ७ ॥

विशेष—जन्मकाल या प्रश्नकाल में पुरुष-स्त्री ज्ञानार्थ, शुभाशुभ ज्ञानार्थ एवं स्वभाव ज्ञानार्थ तथा दिशा ज्ञान में इस श्लोकोक्त संज्ञा का प्रयोजन है।

युक्ति—योगमाया शक्तिविशिष्ट सबल ब्रह्म से सृष्टि होती है। उसमें पहला स्थान पुरुष का और दूसरा स्थान प्रकृति का होने से विषम राशि पुरुष संज्ञक और समराशि स्त्री संज्ञक कहा गया है। स्त्री की अपेक्षा पुरुष का हृदय विशेष कठोर होता है अतः पुरुष राशि को क्रूर और स्त्री राशि को सौम्य कहना युक्ति संगत है। संसार में चंचल, स्थिर और द्विस्वभाव के भेद से तीन स्वभाव वाले प्राणी होते हैं अतः भचक्र के चतुर्थांश में स्थित मेषादि राशित्रय को क्रम से चरादि संज्ञक कहा गया है। चारों दिशाओं में मेषादि राशियों को क्रम से बैठाने पर पूर्व में मेष, सिंह और धनु पड़ते हैं, उसमें मेष से पंचम सिंह एवं नवम धनु होता है अतः पञ्चम-नवम के साथ मेषादि राशियों को दिगीश बताया है। अथवा पञ्चम विद्या और नवम धर्म स्थान है अतः विद्या धर्म से युक्त दिगीश होना उचित ही है ॥ ७ ॥

राशीशनवांशेशयोर्ज्ञानम्—

कुजशुक्रज्ञेन्दुरवीज्ञशुक्रकुजजीवशनियमगुरवः ।

मेषा नवांशकानामजमकरतुलाकुलीराद्याः ॥८॥

सं०—कुज शुक्र-ज्ञ-इन्दु-अर्क-ज्ञ-शुक्र-कुज जीव-सौरि यम (शनि)गुरुवः ग्रहाः भेषाः=मेषादिराशीनामीशाः भवन्ति। अजमकरतुलाकुलीराद्याः= मेषमकरतुलाकर्काद्याः, राशयः मेषादिराशिनवांशकानां राशयो भवन्ति। तासां राशीनामधिपतयो ग्रहाः नवांशेशाः भवन्तीत्यर्थः।

हिन्दी—मेषादि राशियों के क्रम से मंगल, शुक्र, बुध, चन्द्र, सूर्य, बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, शनि, शनि और गुरु स्वामी हैं। मेषादि, मकरादि, तुलादि और कर्कादि राशियाँ मेषादिराशियों की नवांश राशियाँ हैं। जिस नवांश राशि का जो ग्रह स्वामी होगा वह उस नवांश का स्वामी होता है। भाव यह है कि एक राशि में ३० अंश होते हैं। उसमे ९ का भाग देने पर एक नवांश भाग में ३ अंश और २० कला आती हैं। यह एक राशि का भाग होता है। नवांश जानने के लिये मेष, सिंह और धनु राशि में मेषादि से, वृष, कन्या, मकर में मकरादि से, मिथुन, तुला, कुम्भ में तुलादि से, और कर्क, वृश्चिक, मीन राशियों में कर्कादि से गिनती करनी चाहिये। विशेष चक्र एवं उदाहरण में स्पष्ट है ॥ ८ ॥

राशीशबोधक चक्र

राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
स्वामी	मं.	शु.	बु. के.	च.	र.	बु. रा.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.

विशेष—राशीश में राहु और केतु का नाम नहीं है कारण वे उपग्रह हैं। इसलिये आचार्य ने अपने ग्रन्थ में सूर्यादि सप्तग्रहानुसार ही प्रायः फलादेश किया है। प्रयोजन होने पर कन्या राशि का राहु और मिथुन का स्वामी केतु समझना चाहिये। इसमें कुछ विवाद भी है परन्तु विशेष वचन द्वारा उपर्युक्त ही सिद्ध होता है।

युक्ति—भचक्र रूप विश्व के सूर्य और चन्द्र अधिपति हैं, अतः सिंह से छह राशि तक १ भचक्रार्ध का मालिक सूर्य और शेष द्वितीय चक्रार्ध के स्वामी चन्द्र हो गये। बाद में ये दोनों अन्य ग्रहों को एक-एक राशि का स्वामी बनाये। इस हेतु कुजादि ग्रह दो राशियों के स्वामी और सूर्य-चन्द्र एक-एक राशि के स्वामी हैं। सिंह पर अधिकार सूर्य का और कर्क पर चन्द्रमा का है। दोनों पहले युवराज बुध को तब मंत्री शुक्र को फिर सेनापति मंगल को तब देव गुरु सचिव को अन्त में आदेशपाल शनि को एक राशि दिये। इसी के अनुसार राशीश विचार है।

एक राशि में ९ नवमांशा होती है अतः बारह राशियों में १०८ होगी। मेष में प्रथम नवमांशा मेष की बाद में वृष की इस तरह नवम नवांशा धनु की और वृष का

पहला नवांश मकर का होगा और नवम कन्या का होने से मिथुन का प्रथम नवांश तुला का और अन्तिम मिथुन का। कर्क में प्रथम कर्क का होगा। आगे इस रीति से सिंह और धनु का प्रथम नवांश मेष में, कन्या और मकर का प्रथम मकर में, तुला और कुम्भ का प्रथम तुला में और वृश्चिक एवं मीन का प्रथम कर्क में पड़ता है अतः मेष, सिंह, धनु में मेष से, वृष, कन्या, मकर में मकर से, मिथुन, तुला कुम्भ में तुला से और कर्क, वृश्चिक, मीन में कर्क से गिनती करनी चाहिए। इसी युक्ति से ग्रन्थ में नवांश जानने के लिए "अजमकरतुलाकुलीराद्याः" कहा गया है।

उदाहरण—मान लिया कि स्पष्ट रवि की राश्यादि ७।२०।१०।८ है। इससे ज्ञात हुआ कि रवि वृश्चिक राशि के २० अंश १० कला और ८ विकला पर है। वृश्चिक का स्वामी मंगल हुआ। १ नवांश ३ अंश २० कला का होता होता है अतः २० अंश से अधिक होने के कारण रवि सप्तम नवांश में हुआ। वृश्चिक में कर्क से गिनती होती है अतः उससे सप्तम मकर राशि का नवांश हुआ। मकर का स्वामी शनि है अतः शनि की नवांश में रवि हुए। इसी तरह सर्वत्र विचार करना चाहिये।

नवमांशेश-बोधक चक्र

अं.	क.	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	मा.
३	२०	मं	श.	शु.	च.	मं.	श.	शु.	च.	मं.	श.	शु.	चं.	१
६	४०	शु.	श.	मं.	र.	शु.	श.	मं.	र.	शु.	श.	मं.	र.	२
१०	..	बु.	वृ.	वृ.	बु.	बु.	वृ.	वृ.	बु.	बु.	बृ.	बृ.	बु.	३
१३	२०	चं.	मं.	श.	शु.	चे.	मं.	श	शु.	चं.	मं.	श.	शु.	४
१६	४०	र.	शु.	श.	मं.	र.	शु.	श.	मं.	र.	शु.	श.	मं.	५
२०	..	बु.	वृ.	वृ.	बु.	बु.	बृ	बृ.	बु.	बु.	बृ.	बृ.	बु.	६
२३	२०	शु.	च.	मं.	श.	शु.	चं.	मं.	श.	शु.	चं.	मं.	श.	७
२६	४०	मं.	र.	शु.	श.	मं.	र.	शु.	श.	मं.	र.	शु.	श.	८
३०	..	बृ.	बु.	बु.	वृ.	वृ.	बु.	बु.	वृ.	बृ.	बु.	बु.	बृ.	९

उ०—पूर्व उदाहरण में वृश्चिक का सप्तम नवमांश है। चक्र देखने पर शनि नवमांशेश ज्ञात हुआ।

द्वादशांश-द्रेष्काण-होराज्ञानम्—

स्वगृहाद् द्वादशभागाः द्रेष्काणाः प्रथमपञ्चनवपानाम्।
होरे विषमेऽर्केन्द्वोः समराशौ चन्द्रतीक्ष्णांश्वोः ॥९॥

सं०—स्वगृहात्—निजभवनात्, द्वादशभागाः—द्वादशांशाः भवन्ति।

अर्थात् मेपस्य मेषाद्याः,वृपस्य वृषाद्याः एवमग्रेऽपि गणनीयाः। राशित्रिभागो द्रेष्काणस्तेनैकस्मिन् राशौ १० अंशपर्यन्तं प्रथमस्ततः २० अंश पर्यन्तं द्वितीयस्तदग्रे ३० अंशावधिस्तृतीयस्तत्र क्रमेण प्रथमपञ्चनवपानां=स्वपञ्चमनवमराश्यधिपानां, द्रेष्काणाः भवन्तीत्यर्थः। यथा मेषराशौ प्रथम द्रेष्काणेशो भौमः, द्वितीयस्य सूर्यः, तृतीयस्य गुरुरिति। राश्यर्धं होरा भवति तेन एकस्मिन् राशौ द्वे होरे भवतस्तत्रैका होरा १५ अंशमिता। तत्र विषमे=विषमराशौ, अर्केन्द्वोः=सूर्यचन्द्रयोः, समराशौ=युग्मराशौ, चन्द्रतीक्ष्णांशोः=चन्द्रसूर्ययोः, क्रमेण होरे भवतः॥ ९॥

हिन्दी—एक राशि का बारहवां भाग २ अंश ३० कला है। यह प्रथम द्वादशांश हुआ। जिस राशि का द्वादशांशेश जानना हो उस राशि के अंशादि अनुसार जो भाग हो उस भाग में पूर्व राशि से गणना करने पर जो राशि हो वह द्वादशांश की राशि होगी और उसका स्वामी द्वादशांशेश होगा। सभी राशियों में प्रथम द्वादशांश अपनी राशि का होता है अतः अपनी राशि से खण्डा के अनुसार द्वादशांश की गिनती करनी चाहिये।

एक राशि में १० अंश तक प्रथम द्रेष्काण, २० अंश तक द्वितीय और ३० अंश पर्यन्त तृतीय द्रेष्काण होता है। जिस राशि का द्रेष्काणेश विचारना हो उस राशि का प्रथम द्रेष्काण राशि वही राशि होती है। उससे पञ्चम और नवम क्रम से द्वितीय और तृतीय द्रेष्काण राशि होती है। उन राशियों के स्वामी ग्रह द्रेष्काणेश होते हैं।

एक राशि में १५ अंश तक प्रथम और बाद में ३० अंश तक द्वितीय होरा होती है। विपम राशियों में प्रथम होरेश सूर्य और द्वितीय चन्द्र होते हैं। समराशियों में इसका विपरीत अर्थात् प्रथम होरेश चन्द्र और द्वितीय सूर्य होते हैं॥ ९॥

उदाहरण—रवि की स्पष्ट राश्यादिः=५।१५।४५।२५ है। इससे रवि कन्या राशि के १५ अंश ४५ कला २५ विकला पर है यह मालूम हुआ। १ द्वादशांश २ अंश ३० कला का होता है अतः सप्तम द्वादशांश में पड़ा। कन्या से सप्तम राशि मीन राशि होने से मीन का द्वादशांश हुआ। मीन का स्वामी गुरु है अतः द्वादशांशेश गुरु हुए। इस हेतु रवि गुरु के द्वादशांश में हुए। इसी प्रकार गिनती करनी चाहिए।

द्वादशांश खण्डा बोधक चक्र

द्वादशांश	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
अंश	२	५	७	१०	१२	१५	१७	२०	२२	२५	२७	३०
कला	३०	००	३०	००	३०	००	३०	००	३०	००	३०	००

द्रेष्काण का उदाहरण—उक्त रवि कन्या में १५ अंश ४५ कला २५ विकला पर है अतः १० अंश से अधिक २० से कम अंश होने से द्वितीय द्रेष्काण हुआ। प्रथम द्रेष्काण रहता तो कन्या राशि का ही द्रेष्काण होता, द्वितीय होने से कन्या से पञ्चम राशि मकर होने से मकर का द्रेष्काण हुआ। मकर का स्वामी शनि है अतः शनि का द्रेष्काण में रवि हुए। यदि २० से अधिक अंश होता तो तृतीय द्रेष्काण होता और कन्या से नवम वृष राशि का होता। इसी तरह सर्वत्र जानें।

होरा का उदाहरण—कन्या राशि सम राशि है और उसमें १५ अंश से अधिक पर सूर्य है अतः सूर्य की होरा हुई। यदि सिंह में रवि १४ अंश पर होते तो विषम राशि होने से प्रथम होरेश सूर्य ही होते।

युक्ति—सूक्ष्म विचार के लिये द्वादशांश की कल्पना की गयी है। १ राशि में ३० अंश होता है। उसमें बारहों राशियों का समान भोगकाल मानकर उस राशि से ही प्रथम द्वितीय आदि की गिनती करनी उचित क्रम दिखाया गया है। द्रेष्काण में १।५।९ राशियों की प्रधानता का लक्ष्य राशियों का दिव्य स्वरूप कथन है। ५ और ९ विद्या एवं धर्म का द्योतक तथा १ शरीर का द्योतक है। इस हेतु विद्या धर्ममय शरीर दिव्य होता है। होरा में सूर्यचन्द्र की प्रधानता इस हेतु से है कि सूर्य अग्नि और चन्द्र सोम हैं। इनके ऊपर विश्व आधारित है और दोनों का समान अधिकार है।

त्रिंशांशविचारः—

कुजयमजीवज्ञसिताः पञ्चेन्द्रियवसुमुनीन्द्रियांशानाम्।
विषमेषु समर्क्षेषूत्क्रमेण त्रिंशांशपाः कल्प्याः ॥१०॥

सं०—विषमेषु=प्रथम-तृतीय-पञ्च-सप्त-नवमैकादशराशिषु, पंचेन्द्रियवसुमुनीन्द्रियांशानां=पञ्चपञ्चाष्टसप्तपञ्चभागानां, कुजयमजीवज्ञसिताः=मंगल-शनि-गुरु-बुध-शुक्राः, (क्रमेण) त्रिंशांशपाः=त्रिंशांशेशाः, कल्प्याः=कल्पनीयाः। अर्थात् विषमराशौ पञ्चांशपर्यन्तं कुजस्ततः पञ्चांशपर्यन्तं शनिस्तत अष्टांशं यावत् गुरुस्ततः सप्तांशपर्यन्तं बुधस्ततः पञ्चांशं यावत् शुक्रः त्रिंशांशेशो भवति। समर्क्षेषु=द्वितीयचतुर्थषष्ठाष्टमदशमद्वादशराशिषु, उत्क्रमेण=विपरीतरीत्या, अर्थात् पञ्चसप्ताष्टपञ्चपञ्चांशानां शुक्रबुधगुरुशनिकुजाः त्रिंशांशपाः भवन्तीत्यर्थः ॥ १० ॥

हि०—विषम (१।३।५।७।९।११) राशियों में आदि से ५ अंश तक मंगल, बाद में ५ अंश तक शनि, उसके बाद ८ अंश तक गुरु, तदनन्तर ७ अंश तक बुध, बाद में ५ अंश तक शुक्र त्रिंशांशेश होते हैं। सम (२।४।६।८।१०।१२) राशियों में

इसका विपरीत अर्थात् ५ अंश तक शुक्र, ७ तक बुध ८ तक गुरु, ५ तक शनि बाद में ५ अंश पर्यन्त मंगल त्रिंशांशेश होते हैं ॥ १० ॥

त्रिंशांशेश-ज्ञानार्थं चक्र—

विषम राशि में—						समराश में				
ग्रहाः	मं.	श	गु.	बु.	शु	शु.	बु.	गु.	श.	मं.
अंशाः	५	५	८	७	५	५	७	८	५	५

उदाहरण—मान लिया कि रवि की राश्यादि ५।१५।४५।२५ है। यहाँ रवि समराशि कन्या के १५ अंश से अधिक पर है अतः समराशि के चक्रानुसार १२ अंश के बाद २० अंश तक गुरु का होने से गुरु का त्रिंशांश में रवि सिद्ध हुए। यदि सिंह राशि में ९ अंश पर होते तो विषम चक्रानुसार शनि का त्रिंशांश होता ॥

युक्ति—कुजादि पञ्चग्रह पञ्चतत्त्व के द्योतक हैं अतः किसमें कौन तत्त्व का भाग कितना है यह इससे बोध कराया गया है। प्रकृति पुरुष सम विषम राशि हैं। इस हेतु विषम में तेज के द्योतक मंगल का और सम में रस के द्योतक शुक्र का पहला स्थान है ॥

राशीनां दिक्कालबलज्ञानम्—

नृचतुष्पदकीटाप्या बलिनः प्राग्दक्षिणापरोत्तरगाः।
सन्ध्याद्युरात्रिबलिनः कीटा नृचतुष्पदाश्चैवम् ॥११॥

सं०—नृचतुष्पदकीटाप्या=नरचतुष्पदकीटजलचराः, (राशयः) क्रमेण प्राग्दक्षिणापरोत्तरगाः=पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरगताः, बलिनः=सबलाः, भवन्ति। जन्मकुण्डल्यां लग्नदशमसप्तमचतुर्थस्थानानि क्रमेण पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तर-दिग्बोधकानि ज्ञेयानि। एवं कीटा नृचतुष्पदाश्च=जलचरद्विपद-चतुष्पदाः राशयश्च, क्रमेण सन्ध्या, द्युरात्रिबलिनः अर्थात् कीटाः सन्ध्यायां, द्विपदाः दिने, चतुष्पदाः रात्रौ बलिनो भवन्तीत्यर्थः ॥ ११ ॥

हि०—द्विपद (नर), चतुष्पद, कीट और जलचर राशियाँ क्रम से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में रहने पर बली होती हैं। यहाँ लग्नकुण्डली में लग्न को पूर्व, दशम को दक्षिण, सप्तम को पश्चिम और चतुर्थ स्थान को उत्तर दिशा जानना चाहिये। इसलिए लग्न में द्विपद, दशम में चतुष्पद, सप्तम में कीट राशि (वृश्चिक) और चतुर्थ में जलचर राशि बली होती है, यह स्पष्टार्थ है। इसका नाम दिग्बल है। कालबल के लिये कहा गया है कि कीट (कर्क, वृश्चिक, मीन, मकरोत्त-रार्ध) राशि सन्ध्या में, द्विपद दिन में और चतुष्पद रात में बली होती है। द्विपद आदि की संज्ञा आगे कही गयी है ॥ ११ ॥

विशेष—कालबल में कीट से जलचर एवं वृश्चिक राशि का ग्रहण किया गया है।

राशीनां द्विपदादिसंज्ञा—

मेषवृषधन्विसिंहाश्चतुष्पदा मकरपूर्वभागश्च।
कीटः कर्कटराशिः सरीसृपो वृश्चिकः कथितः ॥१२॥

मकरस्य पश्चिमार्धं ज्ञेयो मीनश्च जलचरः ख्यातः।
मिथुनतुलाघटकन्या द्विपदाख्या धन्विपूर्वभागश्च ॥१३॥

सं०—मेषवृषधन्विसिंहाः=मेषवृष-धनुपरार्ध-सिंहाः, मकरपूर्वभागश्च चतुष्पदाः=चतुष्पदसंज्ञकाः, कर्कटराशिः, सरीसृपः, वृश्चिकश्च कीटः=कीट-संज्ञकः, कथितः=उक्तः। मकरस्य=मकरराशेः पश्चिमार्धः=उत्तरार्धभागः, मीनः=मीनराशिः, ख्यातः=प्रसिद्धः, चकारात् कर्कराशिरपि, जलचरः ज्ञेयः। मिथुनतुलाघटकन्या=मिथुनतुलाकुम्भकन्या राशयः, धन्विपूर्वभागश्च, द्विप-दाख्या=द्विपदसंज्ञकाः, सन्तीत्यर्थः ॥ १२-१३ ॥

हिन्दी—मेष, वृष, धनु का परार्ध, सिंह राशि और मकर का पहला भाग चतुष्पद संज्ञक है। कर्क, सरीसृप (सर्प या रेंगकर चलने वाला) और वृश्चिक कीट-संज्ञक हैं। कर्कट का अर्थ केकड़ा है जो जल में ही रहता है अतः कर्क, मकर का परार्ध और मीन राशि जलचर संज्ञक है। मिथुन, तुला, कुम्भ, कन्या और धनु का पूर्वार्द्ध द्विपद संज्ञक है ॥ १२-१३ ॥

वि०—सुश्रुत में कीट का अनेक भेद कहा गया है, सरीसृप से अनेक जीवों का बोध होता है। राशियों में कर्क और वृश्चिक लिया गया है। इनमें कर्क की प्रसिद्धि जलचर में होने से दिग्बल में कीट से वृश्चिक लिया गया है क्योंकि जलचर का पृथक् कथन है। यहाँ द्विपद, चतुष्पद, जलचर और कीट के भेद से जीवों का चतुर्विध भेद है। इनके अतिरिक्त षट्पद, अष्टपद, अपद आदि जीव कीट संज्ञक ज्ञातव्य है। प्रसङ्ग-वश अर्थ समझना उचित होगा ॥

राशिबलज्ञानम्—

अधिपयुतो दृष्टो वा बुधजीवयुतेक्षितश्च यो राशिः।
स भवति बलवान्न यदा युक्तो दृष्टोऽपि वा शेषैः ॥१४॥

सं०—यः राशिः, अधिपयुतोः=स्वस्वामिना युक्तः, दृष्टः=अवलोकितः, वा बुधजीवयुतेक्षितः=बुधगुर्वोरन्यतमेन युतः वा दृष्टः स राशिः, बलवान्

भवति। यदा शेषैः=अनुक्तैर्ग्रहैः, युक्तः=सहितः, अपि वा दुष्टः न स्यादिति ॥ १४ ॥

हि०—जो राशि अपने स्वामी से युत या दृष्ट हो, अथवा बुध या गुरु से युत या दृष्ट हो और यदि अन्य ग्रह से युत-दृष्ट न हो तब वह राशि बली होती है। भावार्थ यह है कि अपने स्वामी, बुध या गुरु से केवल युत-दृष्ट राशि पूर्ण बली, अन्य से भी युत-दृष्ट होने पर मध्यबली और स्वामी, बुध-गुरु इनसे युत-दृष्ट न होने पर निर्बली होती है ॥ १४ ॥

युक्ति—अपने अधिपति से युत-दृष्ट में राशि बली होती है यह स्वाभाविक ही है। मंगल, शनि पाप हैं तथा शुक्र मद का मालिक है अतः इनको छोड़ दिया गया है। बुध वाणी याने वेद का अधिकारी है और गुरु ज्ञान का। इसलिये बुध-गुरु से युत-दृष्ट राशि को बली कहा गया है।

द्वादशभावसंज्ञाकथनम्—

तनुधनसहजसुहृत्सुतरिपुजायामृत्युधर्मकर्माख्याः ।
व्यय इति लग्नाद्भावाश्चतुरस्राख्येऽष्टमचतुर्थे ॥१५॥

सं०—स्पष्टम्।

हि०—लग्न का तनु (शरीर), द्वितीय का धन, तृतीय का सहज, चतुर्थ का सुहृत, पञ्चम का सुत, षष्ठ का रिपु, सप्तम का जाया, अष्टम का मृत्यु, नवम का धर्म, दशम का कर्म, एकादश का आय (लाभ), और द्वादश का व्यय (खर्च) नाम है। ये लग्नादि द्वादश भाव हैं। लग्न से चतुर्थ और अष्टम स्थानों की चतुरस्र संज्ञा है ॥ १५ ॥

वि०—ज्योतिष के ये बारह पदार्थ हैं। इनके यथार्थ ज्ञान से ऐहिक और पारमार्थिक सुख मिलते हैं।

चतुर्थनवमपञ्चमानां संज्ञान्तरम्—

पातालहिबुकवेश्मसुखबन्धुसंज्ञाश्चतुर्थभावस्य ।
नव-पञ्चमे त्रिकोणे नवमर्क्षं त्रित्रिकोणं च ॥१६॥

सं०—स्पष्टम्।

हि०—पाताल, हिबुक, वेश्म, सुख और बन्धु चतुर्थ भाव की संज्ञा है। नवम और पञ्चम का नाम त्रिकोण तथा केवल नवम का नाम त्रित्रिकोण है ॥ १६ ॥

अन्यस्थानानां संज्ञान्तरम्—

धीः पञ्चमं तृतीयं दुश्चिक्यं सप्तमं तु यामित्रम् ।

द्यूनं द्युनं च तद्वच्छिद्रमष्टमं द्वादशं रिष्फम् ॥१७॥

सं०—स्पष्टम् ।

हि०—पञ्चम का धी (बुद्धि), तृतीय का दुश्चिक्य, सप्तम का यामित्र, द्यून, द्युन, अष्टम का छिद्र और द्वादश का रिष्फ नाम है ॥ १७ ॥

केन्द्रादिसंज्ञा—

केन्द्रचतुष्टयकण्टकलग्नाऽस्तदशमचतुर्थानाम् ।
संज्ञा परतः पणफरमापोक्लीमं च तत्परतः ॥१८॥

सं०—स्पष्टम् ।

हि०—लग्न, सप्तम, दशम और चतुर्थ की केन्द्र, चतुष्टय और कण्टक संज्ञा है। इनके अग्रिम स्थान अर्थात् २।८।११।५ का नाम पणफर और इनके अग्रिम स्थान ३।९।१२।६ का नाम आपोक्लीम है ॥ १८ ॥

उपचयापचयवर्गोत्तमनवमांशज्ञानम्—

त्रिषडेकादशदशमान्युपचयभवनान्यतोऽन्यथाऽन्यानि ।
वर्गोत्तमा नवांशाश्चरादिषु प्रथममध्यान्त्याः ॥१९॥

सं०—त्रिषडेकादशदशमानि=तृतीयषष्ठैकादशदशमस्थानानि; उपचयभवनानि=उपचयसंज्ञकानि गृहाणि, सन्ति। अतोऽन्यथाऽन्यानि=उपचयावशिष्टस्थानानि अपचयसंज्ञकानि, ज्ञेयानि। चरादिषु=चरस्थिरद्विस्वभावराशिषु, प्रथममध्यान्त्याः=प्रथमपञ्चमनवमाः, नवांशाः=नवमभागाः, (क्रमेण), वर्गोत्तमा नवांशाः भवन्तीत्यर्थः ॥ १९ ॥

हि०—लग्न से ३।६।११।१० ये स्थान उपचय संज्ञक हैं। इनसे भिन्न स्थान अपचय संज्ञक हैं। चर (१।४।७।१०) स्थिर (२।५।८।११) और द्विस्वभाव (३।६।९।१२) राशियों में क्रम से प्रथम, पञ्चम और नवम नवमांश वर्गोत्तम संज्ञक है। इसका भाव यह है कि प्रत्येक राशि का अपना नवांश वर्गोत्तम संज्ञक होता है ॥ १९ ॥

राशीनां द्युरात्रिबलपृष्ठोदयशीर्षोदयसंज्ञा—

मेषाद्याश्चत्वारः सधन्विमकराः क्षपाबला ज्ञेयाः ।
पृष्ठोदया विमिथुनाः शिरसान्ये ह्युभयतो मीनः ॥२०॥

सं०—सधन्विमकराः=धनुमकराभ्यां सहिताः, मेषाद्याश्चत्वारः=मेषवृषमिथुनकर्कटाः, राशयः क्षपाबलाः=रात्रिबलाः, ज्ञेयाः। शेषाः दिन-

बला भवन्ति। विमिथुनाः = मिथुनरहिताः, अर्थात् मेषवृषकर्कधनुमकराः, पृष्ठोदयाः = पृष्ठोदयसंज्ञकाः, अन्ये = तद्भिन्ना राशयः, शिरसा = शीर्षोदय-संज्ञकाः, हि, मीनः = मीनराशिः, उभयतः = पृष्ठशीर्षाभ्यां, उदेति, अर्थान्मीन उभय संज्ञक इत्यर्थः ॥ २० ॥

हि०—धनु, मकर, मेष, वृष, मिथुन और कर्क ये छह राशियाँ रात्रिबली और शेष दिनबली हैं। उक्त राशि में मिथुन को छोड़कर अर्थात् धनु, मकर, मेष, वृष और कर्क पृष्ठोदय संज्ञक तथा शेष मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक और कुम्भ शीर्षोदय संज्ञक है। मीनराशि दोनों है ॥ २० ॥

ग्रहाणामुच्चनीचमूलत्रिकोणस्थानानि--

अजवृषमृगाङ्गनार्किमीनवणिजांशकेष्विनाद्युच्चाः ।
दशशिख्यष्टाविंशतितिथीन्द्रियत्रिनवविंशेषु ॥२१॥

उच्चान्नीचं सप्तममर्कादीनां त्रिकोणसंज्ञानि ।
सिंहवृषाजप्रमदा-कार्मुकभृत्तौलिकुम्भधराः ॥२२॥

संस्कृत—अजवृषमृगाङ्गनार्किमीनवणिजां = मेषवृषमकरकन्याकर्क-मीनतुलाराशीनां, दशशिख्यष्टाविंशतितिथीन्द्रियत्रिनवविंशेषु अंशकेषु; इनात् =सूर्यात्, क्रमेण उच्चाः स्युः। उच्चात् सप्तमं स्थानं, नीचं=नीचसंज्ञकं ज्ञेयम्। अर्कादीनां ग्रहाणां, सिंहवृषाजप्रमदाकार्मुकभृत्तौलिकुम्भधराः=सिंह-वृषमेषकन्याधनुतुलकुम्भाः, राशयः क्रमेण त्रिकोणसंज्ञानि भवन्ती-त्यर्थः ॥ २१-२२ ॥

हि०—सूर्यादि ग्रहों के क्रम से मेष, वृष, मकर, कन्या, कर्क, मीन और तुला उच्च राशि हैं। इनमें १०।३।२८।१५।५।२७।२० अंशों के अनुसार परमोच्च जानना चाहिये। जैसे रवि का मेष में १० अंश, चन्द्र का वृष में ३, मंगल का मकर में २८, बुध का कन्या में १५, गुरु का कर्क में ५, शुक्र का मीन में २७ और शनि का तुला में २० अंश तक परमोच्च है। यहाँ केवल उच्च कहा गया है परन्तु ग्रन्थान्तर में उच्च, परमोच्च का कथन है। अपनी उच्चराशि से सप्तम राशि नीच होती है। उसमें उक्त अंशानुसार परमनीच की कल्पना करनी चाहिए।

मूलत्रिकोण—सूर्य का सिंह, चन्द्र का वृष, मंगल का मेष, बुध का कन्या, गुरु का धनु, शुक्र का तुला और शनि का कुम्भ मूलत्रिकोण हैं ॥ २१-२२ ॥

वि०—राहु का उच्च मिथुन और नीच धनु है। केतु का उच्च धनु और नीच मिथुन है। मूलत्रिकोण कुम्भ है। मूलत्रिकोण में पाराशर का विचार सूक्ष्म

है, तदनुसार सिंह में २० अंश तक रवि का मूलत्रिकोण बाद में स्वराशि, वृष में ३ अंश तक चन्द्र का उच्च उसके बाद मूल त्रिकोण, मेष में १२ अंश पर्यन्त मङ्गल का मूल त्रिकोण बाद में स्वराशि, कन्या में १५ अंश तक बुध का उच्च उसके बाद ५ अंश तक मूलत्रिकोण उसके बाद स्वराशि, धनु में गुरु का १० अंश तक मूलत्रिकोण, बाद में स्वराशि, तुला में १५ अंश तक शुक्र का मूलत्रिकोण बाद में स्वराशि कुम्भ में २० अंश पर्यन्त शनि का मूलत्रिकोण बाद में स्वराशि है।

ग्रहाणां षड्वर्गविचारः—

गृहहोराद्रेष्काणा नवभागो द्वादशांशकस्त्रिंशः।
वर्गः प्रत्येतव्यो ग्रहस्य यो यस्य निर्दिष्टः ॥२३॥

सं०—स्पष्टम्।

हि०—गृह, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांश ये षड्वर्ग हैं। जिस ग्रह का जो गृह होरा आदि कहा गया है वह उसका वर्ग जानना चाहिए ॥२३॥

वि०—कुजादि ग्रहों की होरा नहीं होती तथा सूर्य और चन्द्र का त्रिंशांश नहीं होता, इस हेतु सभी ग्रहों का षड्वर्ग नहीं बनता। पञ्च वर्ग सभी के होते हैं। पाराशर स्मृति में कहा गया है कि जो गुरु, रवि और मंगल सूर्य होरा का और चन्द्र, शुक्र, शनि, चन्द्र होरा का फल देता है। बुध समराशि में हो तो चन्द्र होरा का और विषम में होने से सूर्य होरा का फल देता है। त्रिंशांश में मंगल के समान सूर्य और शुक्र के समान चन्द्र फल देते हैं।

इति लघुजातके राशिप्रभेदाध्यायः ॥

अथ ग्रहभेदाध्यायः

ग्रहाणां आत्मादि विभागकथनम्—

आत्मा रविः शीतकरस्तु चेतः
सत्त्वं धराजः शशिजोऽथ वाणी ।
ज्ञानं सुखं चेन्द्रगुरुर्मदश्च
शुक्रः शनिः कालनरस्य दुःखम् ॥ १ ॥

संस्कृत—कालनरस्य = कालपुरुषस्य, रविः=सूर्यः, आत्मा=आत्मा-स्थानीयः, शीतकरः=चन्द्रः, चेतः=मनः, धराजः = भौमः, सत्त्वं=बलम्, शशिजः=बुधः, वाणी, अथ इन्द्रगुरुः=बृहस्पतिः, ज्ञानं सुखं च, शुक्रः मदः=वीर्यम्, शनिः दुःखमस्ति ॥ १ ॥

हि०—कालपुरुष की आत्मा रवि, मन चन्द्र, बल मंगल, वाणी बुध, ज्ञान एवं सुख गुरु, मद (वीर्य) शुक्र और दुःख स्थानीय शनि हैं ॥ १ ॥

आत्मादीनां बलाबलविचारः—

आत्मादयो गगनगैर्बलिभिर्बलवत्तराः ।
दुर्बलैर्दुर्बला ज्ञेया विपरीतः शनिः स्मृतः ॥२॥

संस्कृत—स्पष्टम् ।

हि०—आत्मा आदि स्थानीय ग्रहों के बली होने से आत्मा आदि सबल और निर्बल ग्रहों से निर्बल और मध्य बली से मध्यम जानना चाहिए । शनि का फल विपरीत अर्थात् बलहीन शनि सुखद और बली दुःखप्रद होता है ॥ २ ॥

ग्रहाणां नृपादिभागकथनम्—

राजा रविः शशधरश्च बुधः कुमारः
सेनापतिः क्षितिसुतः सचिवौ सितेज्यौ ।
भृत्यस्तथा तरणिजः सबला ग्रहाश्च
कुर्वन्ति जन्मसमये निजमेव रूपम् ॥ ३ ॥

संस्कृत—स्पष्टम् ।

हि०—इस विश्व के रवि और चन्द्र राजा, बुध राजकुमार, मंगल सेनापति, शुक्र-गुरु मन्त्री और शनि भृत्य (आदेशपाल) हैं। जन्मसमय में बली ग्रह के अनुसार जातक का रूप होता है ॥ ३ ॥

दिगीशाशुभत्वयोर्विचारः—

प्राच्यादीशा रविसितकुजराहुयमेन्दुसौम्यवाक्पतयः ।
क्षीणेन्द्वर्कयमाराः पापास्तैः संयुतः सौम्यः ॥ ४ ॥

सं०—रविसितकुजराहुयमेन्दुसौम्यवाक्पतयो ग्रहाः क्रमेण पूर्वादीनामधिपाः सन्ति । क्षीणेन्द्वर्कयमाराः=क्षीगचन्द्ररविशनिकुजाः, पापाः=अशुभग्रहाः, तैः संयुतः सोम्यः=बुधः, पापः=अशुभः । एतेन—बलीचन्द्रबुधगुरुशुक्राः शुभग्रहाः सिद्धचन्ति ॥ ४ ॥

हिन्दी—रवि, शुक्र, मंगल, राहु, शनि, चन्द्र, बुध और गुरु क्रम से पूर्वादि दिशाओं के स्वामी हैं। जैसे पूर्व का रवि, अग्निकोण का शुक्र, दक्षिण का मंगल, नैऋत्य का राहु, पश्चिम का शनि, वायुकोण का चन्द्र, उत्तर का बुध और ईशान का गुरु स्वामी है। क्षीणचन्द्र, रवि, शनि और मंगल पापग्रह हैं। इनके साथ रहने पर बुध भी पापी होता है। इनसे भिन्न अर्थात् पूर्णचन्द्र बुध, गुरु और शुक्र शुभग्रह हैं ॥ ४ ॥

वि०—नैसर्गिक और तात्कालिक भेद से ग्रहों का शुभाशुभ भेद द्विविध है। क्षीण चन्द्र और पापयुत बुध अशुभ होते हैं। अतः इन दोनों को सम कहा गया है जैसे—

रविसौरिकुजाः पापा गुरुशुक्रौ शुभौ स्मृतौ ।
ज्ञेन्दू समौ, तमः खेटौ साहचर्यात् फलप्रदौ ॥

पराशर के अनुसार तात्कालिक शुभ ग्रह वे हैं जो जन्माङ्ग में १।५।९ इन स्थानों के स्वामी हों और ३।६।११ स्थानों के स्वामी अशुभ होते हैं। विशेष विचार वहाँ देखें ॥ ४ ॥

ग्रहाणां पुंस्त्रीनपुंसकसंज्ञा शाखेशत्वं च—

क्लीबपती बुधसौरी चन्द्रसितौ योषितां नृणां शेषाः ।
ऋगथर्वसामयजुषामधिपा गुरुसौम्यभौमसिताः ॥ ५ ॥

सं०—स्पष्टम् ।

हिन्दी—बुध और शनि क्लीबों (नपुंसक) के, चन्द्र और शुक्र स्त्रियों के और

शेष रवि, मंगल और गुरु पुरुषों के अधिप हैं। गुरु, बुध, मंगल और शुक्र ये ग्रह क्रम से ऋग्वेद, अथर्ववेद, सामवेद और यजुर्वेद के अधिप हैं ॥ ५ ॥

ग्रहाणां वर्णेश कथनम्—

जीवसितौ विप्राणां क्षत्राणां रविकुजौ विशां चन्द्रः ।
शूद्राधिपः शशिसुतः शनैश्चरः सङ्करभवानाम् ॥ ६ ॥

सं०—जीवसितौ=गुरुशुक्रौ, विप्राणां, रविकुजौ क्षत्राणां=क्षत्रियाणां, अधिपौ स्तः। चन्द्रः विशां=वैश्यवर्णानां, अधिपः, शशिसुतः=बुधः शूद्राधिपः शनैश्चरः सङ्करभवानां=प्रतिलोमजानां, अधिपोऽस्तीति ॥ ६ ॥

हि०—गुरु और शुक्र विप्रवर्ण के, रवि और मंगल क्षत्रिवर्ण के, चन्द्र वैश्यवर्ण का बुध शूद्रवर्ण का और शनि संकरवर्ण (सूत, मागध, म्लेच्छ, नीचवर्ण) का अधिप है ॥ ६ ॥

ग्रहाणां स्थानबलम्—

बलवान् स्वगृहोच्चांशे मित्रर्क्षे वीक्षितः शुभैश्चापि ।
चन्द्रसितौ स्त्रीक्षेत्रे पुरुषक्षेत्रोपगाः शेषाः ॥ ७ ॥

सं०—स्वगृहोच्चांशे=स्वगृहे स्वोच्चे स्वनवांशे, मित्रर्क्षे=मित्रगृहे, शुभैः=शुभग्रहैः, वीक्षितः=दृष्टः, च, अपि ग्रहो बलवान् भवति। चन्द्रसितौ= चन्द्रशुक्रौ, स्त्रीक्षेत्रे=समराशौ, शेषाः=अवशिष्टाः ग्रहाः, पुरुष-क्षेत्रोपगाः= विषमराशिस्थाः, बलवन्तो भवन्तीत्यर्थः ॥ ७ ॥

हि०—सभी ग्रह अपनी राशि में, अपनी उच्चराशि में, अपनी नवमांश राशि में एवं मित्र ग्रह की राशि में रहें और शुभ ग्रह से दृष्ट हों तो बली होते हैं। चन्द्र और शुक्र समराशि में शेष रवि, मंगल, बुध, गुरु और शनि विषम (१।३।५।७।९।११) राशियों में रहने पर बलवान् होते हैं ॥ ७ ॥

ग्रहाणां दिग्बलं चेष्टाबलं च—

प्राच्यादिषु जीवबुधौ सूर्यारौ भास्करिः शशाङ्कसितौ ।
उदगयने शशिसूर्यौ वक्रेऽन्ये स्निग्धविपुलाश्च ॥ ८ ॥

सं०—जीवबुधौ=गुरुबुधौ, सूर्यारौ=रविभौमौ, भास्करिः=शनिः, शशाङ्कसितौ=चन्द्रशुक्रौ, क्रमेण प्राच्यादिषु=पूर्वादिदिक्षुषु, बलिनौ भवतः। अर्थात् पूर्वदिक्स्थौ गुरुबुधौ, दक्षिणस्थौ रविकुजौ, पश्चिमस्थः शनिः, उत्तरस्थौ चन्द्रशुक्रौ बलवन्ताविति। एतद् दिग्बलम्। शशिसूर्यौ=चन्द्ररवी, उदगयने=

मकरादिषड्राशिगते, बलिनौ भवतः। अन्ये=कुजादयो ग्रहाः, वक्रे=वक्रगतौ, बलिनस्तथा वियति स्निग्धाः=चिक्कणाः, विपुलाः=पुष्टाः, च दृश्यमाना बलिनो भवन्तीत्यर्थः ॥ ८ ॥

हि०—गुरु और बुध पूर्व में, रवि मंगल दक्षिण में, शनि पश्चिम में और चन्द्र, शुक्र उत्तर में बली होते हैं। लग्नकुण्डली में लग्न पूर्व, लग्न से दशम स्थान दक्षिण, सप्तम पश्चिम और चतुर्थ उत्तर दिशा है। इसके आधार पर उक्त स्थानों के पूर्वापर स्थानों के अनुसार कोणों की व्यवस्था समझनी चाहिये। यह दिग्बल है। चेष्टाबल के लिये कहा गया है कि मकरादि छह राशियों में चन्द्र और सूर्य तथा शेष कुजादि ग्रह बिम्ब आकाश में स्वच्छ और पुष्ट दृश्य हों तो बली होते हैं ॥ ८ ॥

कालबलम्—

अह्नि सितार्कसुरेज्या द्युनिशं ज्ञो नक्तमिन्दुकुजसौराः।
स्वदिनादिष्वशुभशुभा बहुलोत्तरपक्षयोर्बलिनः ॥ ९ ॥

सं०—सितार्कसुरेज्याः=शुक्ररविगुरवः, अह्नि=दिवसे, बलिनः, ज्ञः=बुधः, द्युनिशं=अहोरात्रं, बली, इन्दुकुजसौराः=चन्द्रमंगलशनैश्चराः, नक्तं=रात्रौ, बलिनः। अशुभशुभाः=पापाः शुभाश्च, स्वदिनादिषु=निजनिजदिनमासवर्षकालहोरासु, तथा बहुलोत्तरपक्षयोः=कृष्णशुक्लपक्षयोः, क्रमेण बलिनः स्युरिति ॥ ९ ॥

हि०—शुक्र, रवि और गुरु दिन में, बुध दिन और रात दोनों में, और चन्द्र, मंगल एवं शनि रात में बली होते हैं। पापग्रह और शुभग्रह दोनों अपने-अपने दिनादियों में तथा पापग्रह कृष्ण पक्ष में और शुभग्रह शुक्ल पक्ष में बली होते हैं ॥ ९ ॥

नैसर्गिकबलम्—

मन्दारसौम्यवाक्पतिसितचन्द्रार्का यथोत्तरं बलिनः।
नैसर्गिकबलमेतद्बलसाम्येऽस्माद् बलाधिकता ॥ १० ॥

सं०—मन्दारसौम्यवाक्पतिसितचन्द्रार्काः=शनिमंगलबुधगुरुशुक्रचन्द्रसूर्याः, ग्रहाः, यथोत्तरं=यथाक्रमेण। उत्तरोत्तरं बलिनो भवन्ति। एतद् ग्रहाणां नैसर्गिकबलम्। बलसाम्ये=बलतुल्ये, अस्मात्=नैसर्गिकबलात्, बलाधिकता =अधिकबलता, भवतीत्यर्थः ॥ १० ॥

हि०—शनि, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र और सूर्य क्रम से उत्तरोत्तर बली होते हैं। अर्थात् शनि से बली मंगल, मंगल से बुध, बुध से गुरु, गुरु से शुक्र, शुक्र से

चन्द्र और चन्द्र से रवि बली हैं। यह ग्रहों का नैसर्गिक (स्वाभाविक) बल है। इस बल का प्रयोजन तब होता है जब षड्वर्ग का बल दो ग्रहों का समान होता है तब नैसर्गिक बल से जो बली होगा वही ग्रह बली होता है ॥ १० ॥

स्थानबलम्—

मित्रक्षेत्रे स्वोच्चे स्वहोरायां स्वभवनत्रिकोणे च।
स्वद्रेष्काणे स्वांशे स्वदिने च बलान्विताः सर्वे ॥११॥

सं०—स्पष्टम्।

हि०—सभी ग्रह मित्र के घर में, अपनी उच्च राशि में, अपनी होरा में, अपनी राशि में, अपनी मूल त्रिकोण की राशि में, अपने द्रेष्काण में, अपनी नवांश राशि में और अपने दिन में बली होते हैं ॥ ११ ॥

विमर्श—स्थान बल पहले भी कहा गया है परन्तु उसमें, होरा, द्रेष्काण, मूल-त्रिकोण, अपना दिन नहीं कहा गया है अतः विशेष कथन इसमें है। होरा केवल रवि और चन्द्र की होती है। मंगल-गुरु की सूर्य की होरा, शुक्र-शनि की चन्द्र की होरा और समराशिस्थ बुध की चन्द्र होरा और विषमस्थ की रवि की होरा होती है ॥ ११ ॥

ग्रहाणां दृष्टिविचारः—

दशम-तृतीये नव-पञ्चमे चतुर्थाष्टमे कलत्रं च।
पश्यन्ति पादवृद्धया फलानि चैवं प्रयच्छन्ति ॥ १२ ॥

सं०—ग्रहाः दशमतृतीये=स्वस्थानात् दशमं तृतीयं च, नवपञ्चमे=नवमं पञ्चमं च, चतुर्थाष्टमे=चतुर्थं, अष्टमं च, कलत्रं=सप्तमं स्थानं, च, पादवृद्धया=चरणवृद्धिक्रमेण, पश्यन्ति=अवलोकयन्ति। एवं फलानि=शुभाशुभफलानि, च, प्रयच्छन्ति=ददतीत्यर्थः ॥ १२ ॥

हि०—सभी ग्रह अपने स्थान से तृतीय और दशम स्थान को एक चरण से, नवम और पञ्चम को दो चरणों से, चतुर्थ और अष्टम को तीन चरणों से और सप्तम स्थान को चारों चरणों से अर्थात् पूर्ण दृष्टि से देखते हैं ॥ १२ ॥

विशेषदृष्टिविचारः—

पूर्णम्पश्यति रविजस्तृतीयदशमे त्रिकोणमपि जीवः।
चतुरस्रं भूमिसुतः सिताऽर्कबुधहिमकराः कलत्रं च ॥ १३ ॥

सं०—रविजः=शनिः, तृतीयदशमे=स्वस्थानात् तृतीयं दशमं स्थानं च,

पूर्णम्पश्यति=पूर्णदृष्ट्या अवलोकयति। जीवः=गुरुः, त्रिकोणं=नवमं पञ्चमं च, पूर्णं पश्यति। भूमिसुतः=मंगलः, चतुरस्रं=चतुर्थं अष्टमं च, पूर्णं पश्यति। सितार्कबुधहिमकराः=शुक्ररविबुधचन्द्राः, कलत्रं=स्वस्थानात् सप्तमं स्थानं, पूर्णदृष्ट्या पश्यन्तीत्यर्थः ॥ १३ ॥

हि०—शनि अपने स्थान से ३।१० को, गुरु अपने स्थान से ५।९ को, मगल अपने स्थान से ४।८ को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। शुक्र, रवि, बुध और चन्द्र ये ग्रह अपने स्थानों से सप्तम स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। यहाँ स्थानगत दृष्टि के अनुसार उक्त स्थान स्थित ग्रहों का भी दृष्टि-विचार जानना चाहिये ॥ १३ ॥

युक्ति :—अखिल ब्रह्माण्ड नायक परमात्मा ने सृष्टि के आदि में विश्वकल्याणार्थं एक अधिषद् की व्यवस्था की। उस में सूर्यादि ग्रहों को राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, मंत्री, उपमंत्री और नेता आदि पदों पर मनोनीत किया। उन्हें दिग्, देश, काल, स्थान, जाति, वेद, वर्ण, शुभाशुभत्व, पुंस्त्री विभाग, आत्मा मन, बल, वाणी, ज्ञान, सुख और दुःख आदि के यथाक्रम से अधिकारी बनाये। ये विषय इस अध्याय में प्रतिपादित हैं। अन्त में दृष्टि विचार किया गया है। प्रत्येक ग्रह अपने स्थान से सप्तम स्थान को पूर्ण दृष्टि से, ३।१० को एक चरण से, ५।९ को दो चरणों से और ४।८ को तीन चरणों से देखता है। सप्तम स्त्री (जाया) भाव होने से उसे पूर्ण दृष्टि से देखना उचित ही है। चतुर्थ सुख और अष्टम मृत्यु भाव है अतः स्त्री के बाद इन दोनों पर तीन चरण दृष्टि रहनी ही चाहिये। पंचम विद्या-(ज्ञान), और नवम धर्म भाव है अतः उस पर अर्धदृष्टि तथा तृतीय पराक्रम और दशम राज (कर्म) भाव है। इन पर एक चरण दृष्टि कहा है। यद्यपि उक्त सभी भाव जीवन के आवश्यक अंग हैं, अतः दृष्टि की न्यूनाधिकता उचित प्रतीत नहीं होती, परन्तु उन भावों के अन्य ग्रह भी रक्षक हैं अतः सामान्य दृष्टि कही गयी है। शनि भृत्य हैं, उन का कार्य पराक्रम और राज्य का संभालना मुख्य होने से ३।१० पर शनि की पूर्ण दृष्टि बतायी। विद्या, ज्ञान और धर्म का अधिकारी गुरु है, इस हेतु ५।९ पर गुरु की पूर्ण दृष्टि कही गयी है। चतुर्थ सुख और अष्टम आयु भाव हैं। इन का रक्षक सेनापति (नेता) मंगल होने से ४।८ पर मंगल की पूर्ण दृष्टि रहनी स्वाभाविक है। सप्तम भाव स्त्री का और सकल प्रकार के व्यापार का भी है। विश्व के सभी कार्यकलाप रूप व्यापार पर प्रधान सचिव, राजा और युवराज का ध्यान रहना आवश्यक है अतः शुक्र, रवि, चन्द्र और बुध की दृष्टि सप्तम स्थान पर कही गयी है ॥ १३ ॥

॥ इति लघुजातके ग्रहभेदाऽध्यायः द्वितीयः ॥

—०—

अथ ग्रहमैत्रीविवेकाध्यायः

यवनोक्तमित्रामित्राणि—

मित्राण्यर्काज्जीवो ज्ञगुरू ज्ञसितौ विभास्करा विकुजाः ।
वीन्द्वर्का विकुजरवीन्दवश्च केषांचिदरयोऽन्ये ॥ १ ॥

सं०—अर्कात्=सूर्यात्, जीवः=गुरुः, ज्ञगुरू=बुधजीवौ, ज्ञसितौ—बुधशुक्रौ, विभास्कराः= सूर्यरहिताः ग्रहाः, विकुजाः=मंगलरहिताः ग्रहाः, वीन्द्वर्काः= चन्द्रसूर्यवर्जिताः ग्रहाः, विकुजरवीन्दवः=मंगलसूर्यचन्द्रवर्जिताः, च मित्राणि भवन्ति । अन्ये ग्रहाः अरयः=शत्रवः, भवन्तीति केषांचिदाचार्याणां मतम् । अयं भावः-सूर्यस्य गुरुः मित्रं, शेषाः रिपवः । चन्द्रस्य बुधजीवौ मित्रे, अन्ये शत्रवः, कुजस्य बुधशुक्रौ मित्रे, शेषाः शत्रवः, एवमग्रेऽपि ज्ञेयम् ॥ १ ॥

हिन्दी—सूर्य के गुरु मित्र शेष शत्रु । चन्द्र के बुध-गुरु मित्र, शेष शत्रु । मंगल के बुध-शुक्र मित्र, अन्य शत्रु । बुध के सूर्य को छोड़कर सभी ग्रह मित्र, रवि शत्रु । गुरु के मंगल के अतिरिक्त सभी ग्रह मित्र,मंगल शत्रु । शुक्र के रवि-चन्द्र को छोड़कर अन्य ग्रह मित्र, रवि चन्द्र शत्रु । और शनि के मंगल,रवि और चन्द्र के अतिरिक्त सभी ग्रह मित्र, मंगल, रवि, चन्द्र शत्रु होते हैं । ऐसा किसी आचार्य का मत है ॥ १ ॥

नोट—यह यवनादि आचार्यों का मत प्रचलित नहीं है ॥ १ ॥

सत्योक्तमित्रामित्राणि—

शत्रू मन्दसितौ समश्च शशिजो मित्राणि शेषा रवे-
स्तीक्ष्णांशुर्हिमरश्मिजश्च सुहृदौ शेषाः समाः शीतगोः ।
जीवेन्दूष्णकराः कुजस्य सुहृदो ज्ञोऽरिः सितार्की समौ
मित्रे सूर्यसितौ बुधस्य हिमगुः शत्रुः समाश्चापरे ॥२॥
सूरेः सौम्यसितावरी रविसुतो मध्योऽपरे त्वन्यथा
सौम्यार्की सुहृदौ समौ कुजगुरू शुक्रस्य शेषावरी
शुक्रज्ञौ सुहृदौ समः सुरगुरुः सौरेस्तथान्येऽरय-
स्तत्काले च दशाऽयबन्धुसहजस्वाऽन्त्येषु मित्रं स्थितः ॥३॥

सं०—रवेः = सूर्यस्य, मन्दसितौ=शनिशुक्रौ, शत्रू, शशिजः=बुधः, समः,

शेषाः=अवशिष्टाः ग्रहाः, (चन्द्रकुजजीवाः), मित्राणि, भवन्ति। शीतगोः= चन्द्रस्य, तीक्ष्णांशुर्हिमरश्मिजश्च=रविबुधौ, सुहृदौ=मित्रे, शेषाः ग्रहाः समाः भवन्ति। कुजस्य=भौमस्य, जीवेन्दूष्णकराः=गुरुचन्द्रसूर्याः, सुहृदः=मित्राणि, ज्ञः=बुधः, अरिः=शत्रुः, सितार्की=शुक्रशनैश्चरौ, समौ भवतः। बुधस्य, सूर्यसितौ=रविशुक्रौ, मित्रे, हिमगुः=चन्द्रः, शत्रुः, अपरे=मंगलगुरुशनैश्चराः, समाः स्युः।

सूरेः=गुरोः, सौम्यसितौ=बुधशुक्रौ, अरी=शत्रू, रविसुतः=शनिः,मध्यः= समः, अपरे तु=चन्द्रकुजसूर्याः, अन्यथा=मित्राणि, भवन्ति। शुक्रस्य, सौम्यार्की=बुधशनी, सुहृदौ=मित्रे, कुजगुरू समौ, शेषौ=अर्कचन्द्रौ, अरी= शत्रू, सौरेः=शनैश्चरस्य, शुक्रज्ञौ=शुक्रबुधौ, सुहृदौ=मित्रे, सुरगुरुः= बृहस्पतिः, समः तथा अन्ये=चन्द्ररविकुजाः, अरयः=शत्रवः, भवन्ति। एवं ग्रहाणां नैसर्गिकमित्रामित्रविभागे विधाय तात्कालिकं कथयति तत्काले चेति।

तत्काले=इष्टकाले, दशायबन्धुसहजस्वान्त्येषु=दशैकादशचतुर्थतृतीय- द्वितीयद्वादशस्थानेषु, स्थितः ग्रहः मित्रमर्थात् स्वस्थानात् उक्तस्थानेषु यो ग्रहो भवेत् स तस्य मित्रम्। तद्भिन्नस्थानेष्ववस्थितः शत्रुरिति भावार्थः॥ २-३॥

हि०—रवि के—शनि-शुक्र शत्रु, बुध सम, चन्द्र, कुज-गुरु मित्र हैं।
चन्द्र के—रवि-बुध मित्र, शेष ग्रह सम हैं।

मङ्गल के—गुरु, चन्द्र, रवि, मित्र, बुध शत्रु, शुक्र-शनि सम हैं।
बुध के—रवि-शुक्र मित्र, चन्द्र शत्रु, मंगल, गुरु, शनि सम हैं।
गुरु के—बुध-शुक्र शत्रु, शनि सम, शेष रवि-मंगल-गुरु मित्र हैं।
शुक्र के—बुध-शनि, मित्र, कुज-गुरु, सम, रवि-चन्द्र, शत्रु हैं।
शनि के—शुक्र-बुध, मित्र, बृहस्पति सम, चन्द्र, रवि, मंगल, शत्रु हैं।

यह नैसर्गिक मित्रामित्र विचार है। तात्कालिक मित्रामित्र के हेतु कहा गया है कि—इष्टकालिक लग्नकुण्डली में जिस ग्रह से जो ग्रह १०।११।४।३।२।१२। इन स्थानों में से किसी एक स्थान में रहता है वह उसका तात्कालिक मित्र होता है। अन्य स्थानों में रहने पर शत्रु होता है। विशेष आगे कहा गया है॥ २-३॥

उपपत्ति—'सत्योक्ते सुहृदस्त्रिकोणभवनादित्यादि आप्तवचनानुसार प्रत्येक ग्रह की अपनी मूल त्रिकोण राशि से ८।४।२।१२।५।९। इन राशियों का स्वामी तथा अपनी उच्च राशि का स्वामी मित्र होता है। विशेषता यह है कि दो राशियों का स्वामी मित्र, एक राशि का स्वामी सम और उक्त स्थानों का स्वामी जो न हो वह

उसका शत्रु होता है। सूर्य और चन्द्र एक राशि के स्वामी हैं अतः ये दोनों उक्त राशियों में एक राशि का स्वामी होने से मित्र होते हैं। इसीके आधार पर नैसर्गिक मित्रामित्र विचार किया गया है। रवि का मूलत्रिकोण राशि सिंह है। उससे पञ्चम धनु और अष्टम मीन है। इन दोनों का स्वामी गुरु है अतः रवि का मित्र गुरु हुआ। इसी तरह सिंह से चौथी वृश्चिक और नवम मेष राशि का स्वामी मंगल होने से रवि का मित्र हुआ। सिंह से कर्क राशि बारहवीं है अतः उसका स्वामी चन्द्र भी रवि का मित्र हुआ। बुध सिंह से द्वितीय राशि मात्र का स्वामी होने से सम हुआ। वृष और तुला एवं मकर, कुम्भ राशियाँ सिंह से गिनती करने पर उक्त स्थानों में नहीं पड़तीं हैं अतः इनके स्वामी शुक्र और शनि रवि के शत्रु हैं। इसी तरह अन्य ग्रहों का भी विचार करना चाहिए।

तात्कालिक मित्र के जो स्थान कहे गये हैं वे राज्य, आय, व्यय, सुख, पराक्रम और धन के द्योतक हैं। इसलिए इन स्थानों में रहने वाले ग्रह को मित्र होना उचित ही है॥ २-३॥

पञ्चधामैत्रीविचार :—

मित्रमुदासीनोऽरिर्व्याख्याता ये निसर्गभावेन।
तेऽधिसुहृन्मित्रसमास्तत्कालमुपस्थिताश्चिन्त्याः॥४॥

सं०—निसर्गभावेन = स्वाभाविकमित्रमित्रविचारेण, ये मित्रमुदासी=सखा समः शत्रुश्चेति त्रयः, व्याख्याताः=कथिताः, ते, तत्कालं=इष्टकालं, उपस्थिताः=प्राप्ताः, सन्तः, क्रमेण अधिसुहृत्-मित्र-समाः चिन्त्याः। एतदुक्तं भवति—यो ग्रहः यस्य नैसर्गिके तात्कालिके च मित्रे स तस्य अधिमित्रम्। एकत्र मित्रमन्यत्र समस्तदा मित्रम्। एवं मित्रशत्रुत्वे समः, शत्रुशत्रुत्वे अधिशत्रुः, तथा शत्रुसमत्वे शत्रुर्भवतीति॥ ४॥

हिन्दी—नैसर्गिक भाव से जो ग्रहों के मित्र, सम और शत्रु. कहे गये हैं वे यदि तात्कालिक मित्र हों तो क्रम से अधि-मित्र, मित्र और सम होते हैं। अर्थात् दोनों में मित्र हो तो अधिमित्र, एक में मित्र अन्य में सम हो तो मित्र और एक में मित्र अन्य में शत्रु होने से सम जानना चाहिए। तात्कालिक शत्रु का कथन आगे है अतः यहाँ केवल तीन भेद दिखाये गये हैं। दोनों में शत्रु होने से अधिशत्रु और एक में शत्रु अन्य में सम होने पर शत्रु होता है। तात्कालिक में सम का विचार नहीं है। अपने स्थान से १।६।९।५।८।७ इन स्थानों में ग्रह होने पर तात्कालिक में शत्रु कहा गया है॥ ४॥

तात्कालिकशत्रुस्थानानि—

मूलत्रिकोणषष्ठत्रिकोणनिधनैकराशिसप्तमगाः।
एकैकस्य यथा सम्भवन्ति तात्कालिका रिपवः॥५॥

सं०—स्पष्टम् ।

हिन्दी—प्रत्येक ग्रह की मूलत्रिकोण राशि में और अपने स्थान से ६।९।५।८।१।७ इन स्थानों में स्थित ग्रह शत्रु होता है ॥ ५ ॥

स्पष्टार्थं नैसर्गिक मित्रादि बोधक चक्र—

ग्रहाः	र.	च.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.
मित्राणि	च. मं. बृ.	र. बु.	बृ. र. चं.	र. शु.	र. चं. मं.	बु. श.	शु. बु.
समाः	बु.	मं. बृ. शु श.	शु. श.	मं. श. बृ.	श.	मं. बृ.	बृ.
शत्रवः	शु. श.	×	बु.	च.	बु. शु.	र. चं.	र.चं. मं.

तात्कालिक मित्रादिबोधक चक्र—

मित्रस्थानानि—१० । ११ । ४ । ३ । २ । १२
शत्रुस्थानानि—६ । ९ । ५ । ८ । ७ । १, मू० त्रि०

वि०—मूलत्रिकोण राशिस्थ ग्रह मित्र भी होता है। इस लिये तात्कालिक मैत्री विचार में जो मूलत्रिकोणराशिस्थ ग्रह को शत्रु कहा गया है वह सर्वमान्य नहीं है। पाराशर में मूल त्रिकोण नहीं है जैसे—

दशबन्ध्वायसहजस्वान्त्यस्थास्ते परस्परम् ।
तत्काले मित्रतां यान्ति रिपवोऽन्यत्र संस्थिताः ॥

पञ्चधामैत्री चक्र बनाने का उदाहरण—

जन्मलग्नकुण्डली—
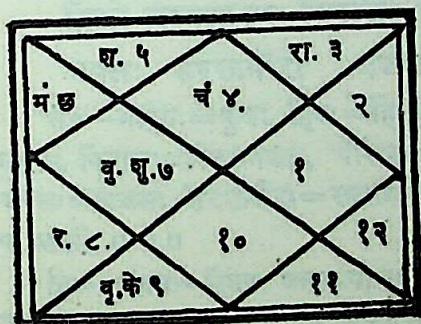
रवि का चन्द्र, मंगल और गुरु नैसर्गिक मित्र हैं। तात्कालिक लग्न कुण्डली में रवि से चन्द्र ९ में होने से शत्रु हुआ अतः पञ्चधा मैत्री में सम, मंगल ११ में होने से मित्र अतः रवि का मंगल अधिमित्र, गुरु रवि से द्वितीय है अतः मित्र होने से

अधिमित्र हुआ। नैसर्गिक में रवि का बुध सम है और कुण्डली में रवि से १२ वें में होने से मित्र हुआ अतः मित्र हुआ। शुक्र शनि नैसर्गिक में रवि के शत्रु हैं, तात्कालिक में रवि से १२ में शुक्र मित्र और १० में शनि मित्र हुये। शत्रु और मित्र होने से ये दोनों रवि के सम हुये। इसी तरह सभी ग्रहों का विचार कर पञ्चधा मैत्री.चक्र निम्नलिखित बना है—

पञ्चधा मैत्रीचक्र—

ग्र.	र.	च.	म.	बु.	बृ.	शु.	श.
अधिमि.	मं. बृ.	बु.	र. चं. बृ.	र.	र. मं.	श.	बु. शु.
मित्र	बु.	मं. शु. श.	शु. श.	मं.बृ.श.	×	मं. बृ.	×
सम	च. शु. श.	र.	बु.	शु. चं.	चं. बु. शु.	बु. चं. र.	चं. र.मं.
शत्रु	×	बृ.	×	×	श.	×	बृ.
अधिशत्रु	×	×	×	×	×	×	×

इति लघुजातके ग्रहमैत्रीविवेकाध्यायस्तृतीयः ॥

—०—

अथ ग्रहस्वरूपाध्यायः

रविस्वरूपम्—

चतुरस्रो नात्युच्चस्तनुकेशः पैत्तिकोऽस्थिसारश्च ।
शूरो मधुपिंगाक्षो रक्तश्यामः पृथुश्चार्कः ॥ १ ॥

सं०—अर्कः=सूर्यः, चतुरस्रः=समदीर्घविस्तृतिः, नात्युच्चः=मध्यमोच्चः, तनुकेशः=स्वल्पकचः, पैत्तिकः=पित्तात्मकः, अस्थिसारः=दृढ़ास्थिः, शूरः=वीरः, मधुपिंगाक्षः=मधुसमपीतनयनः, रक्तश्यामः=रक्तश्यामवर्णः, पृथुः=विस्तीर्णः, च, अस्ति ॥ १ ॥

हिन्दी—सूर्य चतुरस्र, मध्यम उच्च, अल्प केश वाला, पित्त प्रकृतिक, मजबूत अस्थिवाला, वीर, मधुसदृश पिङ्गलनयन, रक्तश्याम वर्ण और स्थूलशरीर वाला है ॥१॥

चन्द्रस्वरूपम्—

स्वच्छः प्राज्ञो गौरश्चपलः कफवातिको रुधिरसारः ।
मृदुवाग् घृणी प्रियसखस्तनुवृत्तश्चन्द्रमाः प्रांशुः ॥ २ ॥

सं०—चन्द्रमाः=चन्द्रः, स्वच्छः=धवलः, प्राज्ञः—पण्डितः, गौरः=गौरवर्णः, चपलः=अस्थिरचित्तः, कफवातिकः=श्लेष्मवायुप्रकृतिः, रुधिरसारः=रक्ताधिकः, मृदुवाग्=कोमलभाषी, घृणी=दयालुः, प्रियसखः=मित्रप्रियः, तनुवृत्तः=कृशवर्तुलशरीरः, प्रांशुः=उच्चः, च भवति ॥ २ ॥

हिन्दी—चन्द्र स्वच्छ, पण्डित, गौरवर्ण, चञ्चल, कफवातप्रकृतिक, विशेष रक्त वाला, मृदुभाषी, दयालु, मित्रप्रिय, कृशवर्तुलाकृति और उच्चशरीर वाला है ॥२॥

कुजस्वरूपम्—

हिंस्रो ह्रस्वस्तरुणः पिंगाक्षः पैत्तिको दुराधर्षः ।
चपलः सरक्तगौरो मज्जासारश्च माहेयः ॥ ३ ॥

सं०—माहेयः=कुजः, हिंस्रः=हिंसायुक्तः, ह्रस्वः=अल्पोच्चः, तरुणः=युवकः, पिंगाक्षः=पिंगलनयनः, पैत्तिकः=पित्तप्रकृतिकः, दुराधर्षः=दुराचारी, चपलः=चञ्चलः, सरक्तगौरः=रक्तमिश्रितगौरवर्णः, मज्जासारः=मज्जाधिकः, च, भवति ॥ ३ ॥

हि०—मंगल—हिंसक, अल्पकाय, युवा, पिङ्गलनेत्रवाला, पित्तात्मक, दुराचारी, चञ्चल, रक्तमिश्रित गौरवर्ण और अधिक मज्जाधातु वाला है ॥ ३ ॥

बुधस्वरूपम्—

मध्यमरूपः प्रियवाग् दूर्वाश्यामः शिराततो निपुणः।
त्वक्सारस्त्रिस्थूणः सततं हृष्टस्तु चन्द्रसुतः ॥४॥

सं०—चन्द्रसुतः=बुधः, मध्यमरूपः=मध्यमवर्णः, प्रियवाग्=प्रियवक्ता, दूर्वाश्यामः=दूर्वासमश्यामवर्णः, शिराततः=विस्तृतस्नायुः, निपुणः=दक्षः, त्वक्सारः=दृढ़त्वचः, त्रिस्थूणः=कफादित्रिप्रकृतिकः, सततं=नित्यं, हृष्टः=प्रमुदितः, च अस्ति ॥ ४ ॥

हि०—बुध—मध्यमवर्ण वाला, प्रिय बोलने वाला, दूर्वासदृश श्यामवर्ण, विस्तृत शिरा (नली) वाला, चतुर, मोटी त्वचा वाला, कफ़-वात-पित्त प्रकृतिक और हमेशा प्रसन्न रहने वाला है ॥ ४ ॥

गुरुस्वरूपम्—

मधुनिभनयनो मतिमानुपचितमांसः कफात्मको गौरः।
ईषत्पिङ्गलकेशो मेदःसारो गुरुर्दीर्घश्चः ॥ ५ ॥

सं०—गुरुः=बृहस्पतिः, मधुनिभनयनः=मधुसमलोचनः, मतिमान्=बुद्धिमान् उपचितमांसः=मांसपुष्टशरीरः, कफात्मकः=कफप्रकृतिकः, गौरः=गौरवर्णः, ईषत्पिंगलकेशः=किञ्चित्पिंगलकचः, मेदःसारः=मेदोधिकः, गुरुर्दीर्घः=दीर्घशरीरः, च, अस्ति ॥ ५ ॥

हि०—गुरु—मधुसदृश पिङ्गल नेत्रवाला, बुद्धिमान्, मांसल शरीरवाला, कफप्रकृतिक, गौरवर्ण, थोड़ा पिङ्गलवर्ण केशवाला, अधिक चर्बीवाला और बहुत ही लम्बा शरीर-वाला है ॥ ५ ॥

शुक्रस्वरूपम्—

श्यामो विकृष्टपर्वा कुटिलासितमूर्द्धजः सुखी कान्तः।
कफवातिको मधुरवाग्भृगुपुत्रः शुक्रसारश्च ॥ ६ ॥

सं०—भृगुपुत्रः=शुक्रः, श्यामः=श्यामवर्णः, विकृष्टपर्वा=आकर्षितावयवः, कुटिलासितमूर्द्धजः=कुञ्चितकृष्णकचः, सुखी, कान्तः=सुन्दरः, कफवातिकः=कफवातप्रकृतिकः, मधुरवाग्=मिष्टभाषी, शुक्रसारः=वीर्याधिकः, च, अस्ति ॥ ६ ॥

हि०—शुक्र—श्यामवर्ण, आकर्षित अवयव वाला, काला कुञ्चित केशवाला, भोगी, सुन्दर, कफवातप्रकृतिक, मधुरभाषी और अधिक वीर्य वाला है ॥ ६ ॥

शनिस्वरूपम्—

कृशदीर्घः पिंगाक्षः कृष्णः पिशुनोऽलसोऽनिलप्रकृतिः ।
स्थूलनखदन्तरोमा शनैश्चरो स्नायुसारश्च ॥ ७ ॥

सं०—शनैश्चरः=शनिः, कृशदीर्घः=तनूच्चः पिंगाक्षः=कपिलनयनः, कृष्णः=श्यामः, पिशुनः=निन्दकः, अलसः=आलस्ययुक्तः, अनिलप्रकृतिः=वातप्रकृतिकः, स्थूलनखदन्तरोमाः=पीवरनखदन्तकेशाः, स्नायुसारः=शिराऽधिकः, च, अस्ति ॥ ७ ॥

हि०—शनि—पतला दीर्घ शरीरवाला, पिंगल नेत्रवाला, श्यामवर्ण, निन्दक, आलसी, वायुप्रकृतिक, स्थूल नख, दांत और रोम वाला और अधिक नसवाला है ॥ ७ ॥

स्वरूपप्रयोजनम्

एते ग्रहा बलिष्ठाः प्रसूतिकाले नृणां स्वमूर्तिसमम् ।
कुर्युर्देहं नियतं बहवश्च समागता मिश्रम् ॥ ८ ॥

सं०—प्रसूतिकाले=जन्मकाले, वलिष्ठाः=बलयुक्ताः, एते ग्रहाः=सूर्यादयो-ग्रहाः, नृणां=नराणां, स्वमूर्तिसमम्=निजरूपतुल्यम्, नियतं=निश्चितं, देहं=, शरीरं, कुर्युः=कुर्वन्ति, चेत् बहवः=अनेके बलिनो ग्रहाः, समागताः=प्राप्ताः, तदा मिश्रम्=मिश्रितरूपं, ब्रुवन्तीत्यर्थः ॥ ८ ॥

हि०—जातक के जन्मकाल में जो सबसे अधिक बली होता है उसके समान जातक के रूप, गरम, प्रकृति आदि होते हैं। यदि अधिक ग्रह बली हों तो मिश्रित रूपादि होते हैं। जातक के रूप, गुणादि कथन में ग्रहस्वरूप का प्रयोजन होता है ॥८॥

इति लघुजातके ग्रहस्वरूपाध्यायश्चतुर्थः ॥

—०—

अथ गर्भाधानाध्यायः

आधानस्वरूपज्ञानम्

आधानेऽस्तगृहं यत्तच्छीलो मैथुने पुमान् भवति ।
सायासमसद्युतवीक्षिते विदग्धं शुभैरस्ते ॥ १ ॥

सं०—आधाने=गर्भाधानकाले, अस्तगृहं=लग्नात्सप्तमभवनं, यत्=यन्मैथुनसम्बन्धिस्वभावः, तत् शीलः=तच्छीलयुक्तः, पुमान्=पुरुषः, मैथुने=सुरतकर्मणि, भवति। असद्युतवीक्षिते=पापयुते दृष्टे वा सप्तमस्थाने, सायासं=श्रमयुक्तं, अस्ते=सप्तमे, शुभैः=शुभग्रहैः, युते दृष्टे वा विदग्धं=सरसं; श्रमादिरहितं वा, मिश्रैः मध्यमञ्च मैथुनं वाच्यमिति ॥ १ ॥

हि०—गर्भाधानकालिक या प्रश्नकालिक लग्नकुण्डली में लग्न से सप्तमस्थान में जो राशि हो उस राशिसम्बन्धि मैथुन का शील पुरुष का समझना चाहिए। यदि पापग्रह से युत या दृष्ट सप्तम स्थान हो तो श्रमयुक्त, शुभग्रह से युत या दृष्ट हो तो सरस श्रमादिरहित और मिश्रग्रह से मध्यम जानना चाहिए ॥ १ ॥

दीपज्ञानम्—

सौरांशेऽब्जांशे वा चन्द्रः सौरान्वितोऽथ हिबुके वा ।
शान्तो दीपो जन्मन्याधाने चेन्न रविदृष्टः ॥ २ ॥

सं०—चन्द्रः=शशी, सौरांशे=शनिनवांशगते, वा अब्जांशे=जलचरराशिनवांशे, अथवा सौरान्वितः=शनियुक्तः, वा हिबुके=चतुर्थे, चेत् रविदृष्टः सूर्यावलोकितः, न, तदा जन्मनि=जन्मकाले, वा आधाने=गर्भाधानकाले, शान्तः दीपः=निर्वापितदीपः, वक्तव्य इति ॥ २ ॥

हि०—जन्मकाल या आधानकाल में यदि चन्द्रमा शनि के नवांश में, या जलचर (मीन, कर्क, मकरोत्तरार्ध) राशि के नवांश में हो, या शनि के साथ हो अथवा लग्न से चतुर्थ में हो और इन सभी योगों में यदि चन्द्रमा सूर्य से दृष्ट न हो तब अन्धकार और सूर्य की दृष्टि होने से प्रज्वलित दीपक कहना चाहिए ॥ २ ॥

जन्मकालविचारः—

चन्द्रो यावत्संख्ये द्वादशभागे निषेकसमये स्यात् ।
तस्मात् तावति राशौ जन्मेन्दौ सम्भवे मासि ॥ ३ ॥

सं०—निषेकसमये=गर्भाधानकाले, चन्द्रः=शशी, यावत्संख्ये=यावत् संख्यके, द्वादशभागे=द्वादशांशे, स्यात्, सम्भवे मासि=जन्मसम्भवमासे नवमे वा दशमे, तावति राशौ=तावत्संख्यकराशौ, जन्मेन्दौ=जन्मकालिकचन्द्रे, प्रसवो भवतीत्यर्थः ॥ ३ ॥

हि०—गर्भाधान काल में चन्द्रमा जिस द्वादशांश की खण्डा में हो, उतनी संख्या की राशि द्वादशांश राशि से अग्रिम राशि में जब चन्द्रमा प्रसवसम्भव (९।१०) मास में जाता है तब प्रसव होता है ॥ ३ ॥

वि०—लग्न नवमांश राशि दिन बली हो तो दिन में और रात्रि बली हो तो रात्रि में जन्म होता है। युक्त भाग के अनुसार दिन या रात्रि का गत समय जानना चाहिये जैसे कहा गया है—

तत्कालं दिवसनिशासंज्ञः समुदेति राशिभागो यः ।
यावानुदयस्तावान् वाच्या दिवसस्य रात्रेर्वा ॥

उदाहरण—कल्पना किया कि आधान कालिक रात्रिगत घटिकादि १०।२३ है। स्पष्टचन्द्रराश्यादि=११।१४।१७।३२। चन्द्र मीन राशि में १४ अंश १७ कला ३२ विकला पर है, अतः द्वादशांश खण्डा छठी हुई। मीन से गिनती करने पर छठी सिंह राशि होती है, इससे षष्ठ राशि मकर होने से मकर राशि के चन्द्र में जन्म होगा। यदि गर्भधारण समय माघशुक्ल पञ्चमी हो तो कार्तिकशुक्ल पञ्चमी के बाद दशम मास में मकरस्थ चन्द्र में जन्म होगा। लग्न यदि कन्या हो और उसका २८ अंश २७ कला ३५ विकलायुक्त हो तब नवम नवांश में कन्याराशि दिनबली होने से दिन में जन्म होगा। यहाँ पूरा आठ नवांश खण्डा २६ अंश ४० कला को लग्न के अंशादि में घटाने से १ अंश ५० कला आती है। यह युक्त भागादि है इसे कला बनाकर इष्ट दिन का दिनमान से गुनाकर उसमें से १ नवांशकला २०० का भाग देने पर दिनगत घटिकादि होगी जैसे दिनमान २७ है तो $\frac{११७ \times २७}{२००}$=१५।४८।

गर्भाधानकालिक चन्द्रवश प्रसव-कालज्ञान—

आधानकाल में चन्द्रस्थिर (२।५।८।११) राशि में हो तो २९२ दिन में, चरराशि (१।४।७।१०) में हो तो २८७ दिन में और द्विस्वभावराशि (३।६।९।१२) में हो तो २८१ दिन में प्रसव होता है।

वैज्ञानिक मत—कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि जिस रोज स्त्री का मासिक धर्म बन्द हो उस दिन से २७८ दिन पर प्रसव होता है। बीच में २८ दिन के फरवरी माह होने पर २७६ दिन जानना चाहिए।

विशेषयोगौ—

उदयति मृदुभांशे सप्तमस्थे च मन्दे
यदि भवति निषेकः सूतिमब्दत्रयेण ।
शशिनि तु विधिरेष द्वादशेऽब्दे प्रकुर्या-
न्निगदितमिह चिन्त्यं सूतिकालेऽपि युक्त्या ॥४॥

सं०—मृदुभांशे=शनिनवांशे, उदयति=लग्नगते सति, मन्दे=शनैश्चरे, सप्तमस्थे=आधानलग्नात् सप्तमस्थाने, च, यदि, निषेकः=गर्भाधानः, भवति, तदा अब्दत्रयेण=वर्षत्रयेण, सूतिः=प्रसवः, स्यात् । शशिनि=चन्द्रे, एष विधिर्यदि स्यात्तदा, द्वादशाब्दे=गर्भाधानात् द्वादशे वर्षे, सूतिः प्रकुर्यात् । इह=अत्र, निगदितं=कथितं योगं, सूतिकाले=जन्मकाले, अपि, युक्त्या, चिन्त्यं=विचारणीयम् ॥ ४ ॥

हि०—आधानकालिक लग्न में शनि की नवांश हो और लग्न से सप्तम शनि हो तो तीन वर्ष में प्रसव होता है । यदि चन्द्रनवांश में लग्न हो और लग्न से सप्तम चन्द्र हो तब १२ वर्ष में प्रसव होता है । इन दोनों योगों का विचार जन्मकाल में भी करना चाहिए ॥ ४ ॥

पितृमातृगतानिष्टयोगाः—

यमवक्रौ द्यूनेऽर्कात् पुंसो रोगप्रदौ स्त्रियश्चन्द्रात् ।
तन्मध्यगयोर्मृत्युस्तदेकयुतदृष्टयोश्चैवम् ॥ ५ ॥

सं०—अर्कात्=सूर्यात्, यमवक्रौ=शनिभौमौ, द्यूने=आधानलग्नात्सप्तमे, पुंसः=पुरुषस्य, रोगप्रदौ=व्याधिकरौ, चन्द्रात् सप्तमे शनिभौमौ स्त्रियः रोगकरौ भवतः । तन्मध्यगयोः=तयोः शनिभौमयोर्मध्यस्थितयोः सूर्यचन्द्रयोः, मृत्युः=मरणम्, स्यादर्थात् शनिभौमयोर्मध्ये रविश्चेत्तदा पुरुषस्य, चन्द्रश्चेत्तदा स्त्रियः निधनं भवतीति । एवं,तदेकयुतदृष्टयोः=तयोर्मध्यादेकेन युक्तम्परेणावलोकितयोः रविचन्द्रयोः, च, क्रमेण पुंस्त्रीमरणं ज्ञेयम् ॥ ५ ॥

आधानकाल में सूर्य से सप्तम शनि और मंगल हो तो पुरुष के लिए रोगकारक और चन्द्रमा से सप्तम हो तो स्त्री के लिये रोगकारक होते हैं । यदि शनि-मंगल के बीच में रवि हो तो पुरुष की मृत्यु और चन्द्र होने से स्त्री की मृत्यु होती है । अथवा शनि-मंगल दोनों में से किसी एक से युत और दूसरे से दृष्ट रवि हो तो पुरुष की चन्द्र हो तो स्त्री की मृत्यु जाननी चाहिए । शुभ ग्रह के योग एवं दृष्टि से सामान्य फल होता है ॥ ५ ॥

मासेशसहितवसफलगर्भरूपाणि—

कललघनावयवास्थित्वग्रोमस्मृतिसमुद्भवाः क्रमशः ।
मासेषु शुक्रकुजजीवसूर्यचन्द्रार्किसौम्यानाम् ॥ ६ ॥
अशनोद्वेगप्रसवाः परतो लग्नेशचन्द्रसूर्याणाम् ।
कलुषैः पीडा पतनं निपीडितैर्निर्मलैः पष्टिः ॥ ७ ॥

सं०—मासेषु प्रथमादिसप्तमासेषु शुक्रकुजजीवसूर्यचन्द्रार्किसौम्यानां ग्रहाणां प्रभावात्क्रमशः गर्भस्य कललघनावयवादिरूपाणि भवन्ति। परतः सप्तममासादग्रे त्रिषु मासेषु लग्नेशचन्द्रसूर्याणां प्रभावादशनोद्वेगप्रसवाः भवन्ति । अर्थात् प्रथममासस्याधिपः शुक्रस्तत्र गर्भस्य रूप कललं द्वितीयस्येशः कुजस्तत्र घनत्वमित्यादि क्रमेण ज्ञातव्यम् । तत्र कलुषैः विवर्णैः ग्रहैः पीड़ा, निपीड़ितैः पराजितैर्ग्रहैः पतनं गर्भपतनम्, निर्मलैः स्वच्छकिरणयुक्तैर्ग्रहैः पुष्टिर्भवतीति ज्ञेयमिति ॥ ६-७ ॥

हि०—गर्भाधान के प्रथम मास से लेकर सात मास पर्यन्त के क्रम से शुक्र, मंगल, गुरु, रवि, चन्द्र, शनि और बुध मासाधिप हैं। इनके प्रभाव से प्रथम मास में गर्भ का रूप कलल अर्थात् शुक्रशोणितसम्मिश्रित झिल्ली का आकार, द्वितीय में पिण्डाकार (घन), तृतीय में अवयव, चतुर्थ में अस्थिवाला, पञ्चम में त्वचा, षष्ठ में रोम और सप्तम में स्मृतियुक्त होता है। इसके बाद आठ से दशम मास तक के क्रम से लग्नेश, चन्द्र और सूर्य मासाधिप होते हैं। उनके प्रभाव से अष्टम मास में अशन (मातृभुक्त-अन्नभोजन), नवम में उद्वेग और दशम में प्रसव होता है। जिस मास का स्वामी ग्रह कलुषित याने विवर्ण हो उसमें पीड़ा, युद्ध में पराजित ग्रह से गर्भपात और निर्मल स्वच्छ किरण वाले ग्रह से गर्भ-की पुष्टि होती है ॥ ६-७ ॥

गर्भसम्भवयोगाः—

बलयुक्तौ स्वगृहांशेष्वर्कसितावुपचयर्क्षगौ पुंसाम् ।
स्त्रीणां वा कुजचन्द्रौ यदा तदा गर्भसम्भवो भवति ॥८॥
लग्ने बलिनि गुरौ वा नवपञ्चमसंस्थितेऽपि वा भवति ।
योगा हतबीजानामफला वीणेव वधिराणाम् ॥ ९ ॥

सं०—बलयुक्तौ=सबलौ, अर्कसितौ=रविशुक्रौ, स्वगृहांशेषु=निजराशिस्वनवांशकेषु, स्थितौ, पुंसां=पुरुषाणां, जन्मराशितः नामराशितो वा उपचयर्क्षगौ=उपचय (३।६।११।१०) राशिगतौ, वा स्त्रीणां=नारीणां, उपचय-

राशिगतौ सबलौ कुजचन्द्रौ स्वगृहांशेष्ववस्थितौ यदा भवतस्तदा गर्भसम्भवो भवति। अथवा बलिनि गुरौ लग्ने वा नवपञ्चमसंस्थिते=त्रिकोणस्थे, अपि, गर्भसम्भवो भवति । इमे योगाः, हृतबीजानां=नपुंसकानां, बधिराणां=श्रुतिसुखरहितानां, वीणा इव, अफलाः=विफलाः, भवन्तीत्यर्थः ॥ ८-९ ॥

हि०—बली रवि और शुक्र अपनी नवांशा में रहकर पुरुष की राशि से उपचय (३।६।११।१०) राशि में रहे या बलवान् मंगल और चन्द्र अपनी राशि और अपनी नवांशा में होकर स्त्री की राशि से उपचय स्थान में हो, अथवा बलीगुरु गर्भाधान कालिक लग्न में या लग्न से नवम या पंचम स्थान में हो तो गर्भस्थिति होती है। ये तीनों योग नपुंसक के लिए विफल होते हैं, जिस तरह वधिर के लिए वीणा वादन का सुख विफल होता है ।। ८-९ ॥

वि०—वृहज्जातक के अनुसार रवि, चन्द्र, शुक्र और मंगल ये चारों ग्रह यदि बली होकर अपने नवांश में होकर पुरुष या स्त्री की राशि से उपचय स्थान में हों तो गर्भसंभव होता है ।

पुंस्त्रीजन्मज्ञानम्—

विषमर्क्षे विषमांशे संस्थिताश्च गुरुशशाङ्कलग्नार्काः ।
पुञ्जन्मकराः समभेषु योषितां समनवांशगताः ॥१०॥

सं०--गुरुशशाङ्कलग्नार्काः=वृहस्पतिचन्द्रलग्नसूर्याः, विषमर्क्षे=विषमराशौ, विषमांशे=विषमराशिनवांशे, च, संस्थिताः=अवस्थिताः, तदा, पुंजन्यकराः=पुरुषजन्मप्रदाः, भवन्ति। यदि ते ग्रहाः समभेषु=समराशिगतेषु, समनवांशगताः=समराशिनवांशं स्थिताः, तदा योषितां जन्मप्रदाः भवन्ति ॥ १० ॥

हि०—गर्भाधानकालिक लग्नकुण्डली में यदि गुरु, चन्द्र, लग्न और रवि विषम (१।३।५।७।९।११) राशि में और विषम राशि के नवांश में हों तो पुरुष याने पुत्र को देते हैं। यदि ये ग्रह सम (२।४।६।८।१०।१२) राशि में समराशि के नवांश में हों तो स्त्री (कन्या) जन्म कारक होते हैं ।। १० ॥

अन्ययोगाः—

बलिनौ विषमेऽर्कगुरू नरं स्त्रियं समगृहे कुजेन्दुसिताः ।
यमलं द्विशरीरांशेष्विन्दुजदृष्टाः स्वपक्षसमम् ।। ११ ॥

सं०—बलिनौ=सबलौ, अर्कगुरू=रविजीवौ, विषमे=विषमराशिस्थितौ तदा नरं=पुरुषं, जनयतः । कुजेन्दुसिताः=मंगलचन्द्रशुक्राः, समगृहे=समराशौ

व्यवस्थिताः, तदा स्त्रियं=नारीं, जनयन्ति। एते योगकारकाः यदि द्विशरीरांशेषु—द्विस्वभावराशिनवांशेषु,इन्दुजदृष्टाः=बुधावलोकिताः, तदा स्वपक्षसमम्=निजपक्षतुल्यं, यमलं=सन्तानयुग्मं, कुर्वन्ति ॥ ११ ॥

हि०—बलवान् रवि और गुरु विषम राशि में हों तो पुत्रप्रद होते है। मंगल, चन्द्र और शुक्र यदि समराशि में हों तो कन्याप्रद होते हैं। ये सभी अर्थात् रवि, गुरु, कुज, चन्द्र और शुक्र यदि द्विस्वभावराशि के नवांश में हों और बुध से देखे जांय तो अपने पक्ष के अनुसार अर्थात् मिथुन और धनु के नवांश में रवि और गुरु हों तथा बुध की दृष्टि उनपर हो तब गर्भ में दो लड़के होते हैं, यदि कन्या और मीन के नवांश में मंगल, चन्द्र और शुक्र हों और उनपर बुध की दृष्टि हो तब दो कन्यायें होती हैं। यदि कुछ ग्रह स्त्रीसंज्ञक (कन्या, मीन) द्विस्वभावराशि के नवांश में हों और कुछ पुरुषसंज्ञक (मिथुन, धनु) द्विस्वभावराशि के नवांश में हों तब एक लड़का और एक लड़की रूप यमल गर्भ में होता है ॥ ११ ॥

पुत्रप्रदयोगः—

लग्नाद्विषमोपगतः शनैश्चरः पुत्रजन्मदो भवति।
निगदितयोगबलाबलमवलोक्य विनिश्चयो वाच्यः ॥१२॥

सं०—स्पष्टम्।

हि०—यदि लग्न से विषम (३।५।७।९।११) स्थान में शनि हो तो पुत्र का जन्म होता है। कथित योगों का बलाबल विचार कर पुत्र या कन्या का जन्म कहना चाहिये ॥ १२ ॥

विशेष—यदि समराशि में चन्द्र और रवि हो तो एक पुत्र और एक कन्या हो। अथवा पुरुष ग्रह से दृष्ट लग्न और चन्द्र समराशि में हों या बुध, मंगल गुरु और लग्न बली होकर समराशि में हों तो एक पुत्र और एक कन्या हो। बलीचन्द्र से दृष्टसमराशि लग्न हो तो दो कन्या हो। मिथुन राशि या नवांश में स्थित बुध से दृष्ट सभी ग्रह धनु–मिथुन के नवांश में हो और मिथुन या धनुलग्न हो तब तीन लड़के होते हैं। यदि सभी ग्रह एवं लग्न कन्या एवं मीन के नवांश में हों और उनको कन्या या मीन नवांशस्थ बुध देखे तो तीन कन्यायें होती हैं। यदि धनु का अन्तिम नवांश लग्न में हो और बली ग्रह धनु के नवांश में हों और उनपर बली शनि और बुध की दृष्टि हो तब गर्भ में प्रभूत सन्तान जानना चाहिये।

इति लघुजातके गर्भाधानाध्यायः पञ्चमः ॥

—०—

अथ सूतिकाऽध्यायः

ग्रहाणां गुणविभागः—

गुरुशशिरवयः सत्त्वं रजः सितज्ञौ तमोऽर्कसुतभौमौ।
एतेऽन्तरात्मनि स्वां प्रकृतिं जन्तोः प्रयच्छन्ति ॥१॥

सं०—गुरुशशिरवयः=जीवचन्द्रसूर्याः, सत्वं=सत्वगुणात्मकाः, सितज्ञौ=बुधशुक्रौ, रजः=रजोगुणयुक्तौ, अर्कसुतभौमौ शनिकुजौ, तमः=तमगुणात्मकौ, एते ग्रहाः जन्तोः=जीवस्य, अन्तरात्मनि=अन्तःकरणे, स्वां=निजां, प्रकृतिं=स्वभावं, प्रयच्छन्ति=ददतीत्यर्थः ॥ १ ॥

हि०—गुरु-चन्द्र और सूर्य सत्वगुणी, शुक्र-बुध रजोगुणी और शनि-मंगल तमोगुणी हैं। ये ग्रह अपनी प्रकृति जीव के अन्तःकरण में देते हैं ॥ १ ॥

गुणरूपादिज्ञानम्—

सत्त्व रजस्तमो वा त्रिंशांशे यस्य भास्करस्तादृक्।
बलिनः सदृशी मूर्तिर्बुध्वा वा जातिकुलदेशान् ॥२॥

सं०—भास्करः=सूर्यः, यस्य ग्रहस्य, त्रिंशांशे व्यवस्थितः तादृक्=तत्सदृशः, सत्वं=सत्वगुणः, रजः=रजोगुणः, वा, तमः=तमोगुणः, जातकस्य वक्तव्यम्। बलिनः सदृशी=बलिष्ठग्रहतुल्या, मूर्तिः=आकृतिः जातकस्य वक्तव्या। वा जातिकुलदेशान्=ज्ञातिवंशस्थानविशेषान्, बुध्वा=ज्ञात्वा, जातकस्य-मूर्तिः वक्तव्येति ॥ २ ॥

हि०—सूर्य जिस ग्रह के त्रिंशांश में रहे, उस ग्रह का जो सत्व, रज या तमोगुण हो वह जातक में होता है। जन्मलग्न कुण्डली में सबसे अधिक बली के समान जातक की मूर्ति होती है। वर्ण कथन में जाति, कुल और देश का विचार करना उचित है क्योंकि कई जाति एवं प्रान्त के लोग श्याम वर्ण या गौर वर्ण ही होते हैं। अतः कहा गया है कि जात्यादि के विचार से फलादेश करना चाहिये ॥ २ ॥

जातकस्वरूपज्ञानम्—

पूर्वविलग्ने यादृक् नव भागस्तादृशी भवति मूर्तिः।
यो वा ग्रहो बलिष्ठस्तत्काले तादृशी वाच्या ॥३॥

सं०—स्पष्टम्।

हि०—प्रथम लग्न में यो नवमांश हो, उसके स्वामी का जो स्वरूप बताया गया है, उसके अनुसार जातक का स्वरूप, अथवा बलवान् ग्रह का स्वरूप जानना चाहिये ॥ ३ ॥

वि०—लग्न का नवमांशेश यदि निर्बल हो तब बली ग्रह के अनुसार जातक के स्वरूपादि विचारना चाहिये । लग्नेश से भी विचार किया गया है परन्तु उसकी अपेक्षा नवमांश का विचार सूक्ष्म है ।

पितृपरोक्षजन्मज्ञानम्—

चन्द्रे लग्नमपश्यति मध्ये वा शुक्रसौम्ययोश्चन्द्रे ।
जन्म परोक्षस्य पितुर्यमोदये वा कुजे वाऽस्ते ॥४॥

सं०—चन्द्रे लग्नं अपश्यति, वा शुक्रसौम्ययोः मध्ये चन्द्रे सति, वा यमोदये = लग्नस्थे शनौ, वा कुजे अस्ते = सप्तमस्थे, पितुः परोक्षस्य जन्म वक्तव्यमिति ॥ ४ ॥

हि०—चन्द्र जन्मलग्न को नहीं देखता हो या शुक्र-बुध के मध्य में चन्द्र हो, वा लग्न में शनि हो, अथवा मंगल लग्न से सप्तम स्थान में हो तो पिता के परोक्ष में जातक का जन्म होता है ॥ ४ ॥

विशेष · मंगल से दृष्ट रवि-शुक्र हो, या दिन का जन्म हो और रवि को मंगल देखता हो तो जातक के जन्म से पहले पितृकष्ट होता है । यदि मंगल से युत या दृष्ट रवि और शुक्र चरराशि में हो तो जातक का पिता अन्यत्र कष्ट पाता है । यदि रात्रि का जन्म हो और मंगल के साथ शनि चर राशि में हो तो परदेश में पितृकष्ट होता है । जन्म लग्न से १२।८ में पापग्रह हो और लग्न का स्वामी बली होकर ४।९ स्थान में हो तो जातक के जन्मसमय में पिता रोगी हो । लग्न में बली सूर्य को शनि देखे या मंगल देखे तो जातक का पिता जन्मकाल में रोगी हो । यदि जन्म लग्न से चतुर्थ और नवम में पापग्रह हो और लग्नेश निर्बल हो, या शुक्र से दृष्ट सूर्य नवांश में स्थित शनि १।६।८ में हो और मंगल से युत या दृष्ट हो तो जातक के जन्मसमय पिता रोगी या किसी विशेष चिन्ता से युक्त होता ।

चन्द्र से ७।८।९ स्थानों में पाप ग्रह हों तो पितृकष्ट होता है । शुभग्रह दृष्टि रहित रवि, शनि और मंगल सप्तम में हो या दिन का जन्म हो और चन्द्र से ५।९ में पापयुक्त शुक्र-मंगल हो तो पितृकष्ट होता है ।

स्थिर राशिस्थ सूर्य से ५।७।९ स्थान पाप युत दृष्ट होने से स्वदेशस्थ झंझट में और चर राशि के सूर्य में परदेश में और द्विस्वभाव राशिस्थ रवि से मार्ग में पिता की स्थिति होती है ।

परजातयोगाः—

पापयुतोऽर्कः सेन्दुः पश्यति होरां न चन्द्रमपि जीवः।
पश्यति सार्कं नेन्दुं यदि जीवो वा परैर्जातः ॥५॥

सं०—सेन्दुः=चन्द्रसहितः, अर्कः=सूर्यः, पापयुतः=अशुभैर्युक्तः, तदा परजातः स्यात्। वा जीवः=गुरुः, होरां=लग्नं, चन्द्रं अपि, न पश्यति अथवा सार्कं=रवियुक्तं, इन्दुं=चन्द्रं, यदि जीवः=गुरुः, न पश्यति तदा परजातः स्यादिति ॥ ५ ॥

हि०—यदि चन्द्र और पापग्रह के साथ सूर्य हो, या लग्न एवं चन्द्र को गुरु न देखता हो, अथवा रवियुक्त चन्द्र को गुरु नहीं देखता हो तो जातक परजात होता है ॥ ५ ॥

सूतिकागृहद्वारज्ञानम्—

द्वारं वास्तुनि केन्द्रोपगाद् ग्रहादसति वा विलग्नर्क्षात्।
दीपोऽर्कादुदयाद् वर्तिरिन्दुतः स्नेहनिर्देशः ॥६॥

सं०—केन्द्रोपगाद् ग्रहात्=लग्नचतुर्थसप्ताष्टमस्थानस्थखेचरात्, वास्तुनि-द्वारं=सूतकागृहद्वारं, वक्तव्यम्। वा असति=केन्द्रे ग्रहाभावे, विलग्नार्क्षात् =लग्नराशिवशात्, द्वारं ज्ञेयम्। अर्कात् दीपः, उदयात्=लग्नात्, वर्त्तिः= वर्तिका, इन्दुतः=चन्द्रतः, स्नेहनिर्देशः, कर्तव्य इति ॥ ६ ॥

हि०—केन्द्र (१।४।७।१०) में स्थित ग्रहानुसार सूतिकागृह का द्वार होता है। केन्द्र में ग्रह नहीं रहने से लग्न राशि के अनुसार द्वार जानना चाहिये। भाव यह है कि जन्म कुण्डली में लग्न पूर्व, चतुर्थ उत्तर, सप्तम पश्चिम और दशम दक्षिण दिशा है। लग्नस्थ बली गृह से पूर्व, चतुर्थस्थ बली से उत्तर, सप्तमस्थ बली ग्रह से पश्चिम और दशमस्थ बली ग्रह से दक्षिण दिशा का द्वार जानना चाहिये। किसी के मत में बली ग्रह की दिशा के सम्मुख द्वार कहा गया है। अर्थात् केन्द्रस्थ ग्रहों में जो बलवान् हो उसकी दिशा की ओर द्वार होता है। इस विचार में दिशाविदिशाओं का ज्ञान सहज से होता है। परन्तु आचार्य का अभिप्राय प्रथम पक्ष ही है। सूर्य से दीपक की दिशा का ज्ञान यदि सूर्य स्थित राशि की दिशा अर्थात् मेष, सिंह और धनु राशिस्थ में पूर्व लिया जाय तो स्थूल होगा क्योंकि एकमास पर्यन्त एक ही दिशा होगी। इस हेतु प्रथम पक्ष ठीक है। केन्द्र में ग्रह नहीं रहे तो लग्नराशि की दिशा याने मे० सिं० ध० में पूर्व, वृष, म० कन्या में दक्षिण, कु० तु० मि० में पश्चिम और कर्क, वृश्चि० मी० में उत्तर दिशा होती है। लग्न के अनुसार दिशाओं की व्यवस्था स्थूल होगी, कारण लगातार तीन लग्नों में एक दिशा आती है।

सूर्य की राशि के अनुसार दीपक की दिशा होगी। लग्न से बत्ती का ज्ञान अर्थात्

लग्नारम्भ में पूर्ण,मध्य में आधी और अन्त में अन्तिम भाग वत्ती का जानना चाहिये। राशि के प्रारम्भ में चन्द्र होने से तैल पूर्ण, मध्य में अर्ध और अन्तिम में शेषावस्था होती है। अन्य समय में अनुपात द्वारा ज्ञान होता है। जो लग्नादि द्वादश भावानुसार दीपक की दिशा का ज्ञान किया है वह ठीक नहीं है॥ ६॥

सूतिकागृहस्वरूपज्ञानम्—

अदृढं नवमथ दग्धं चित्रं सुदृढं मनोरमं जीर्णम्।
गृहमर्कादिकवीर्यात् प्रतिभवनं सन्निकृष्टैश्च॥७॥

सं०—स्पष्टम्।

हि०—जन्म कुण्डली में बली सूर्यादि ग्रहों के अनुसार अदृढ़ आदि सूतिका गृह कहा गया है, अर्थात् रवि से कमजोर, चन्द्र से नवीन, मंगल से दग्ध (जला), बुध से चित्र (कलायुक्त), गुरु से सुदृढ़ (मजबूत), शुक्र से मनोरम (सुन्दर), शनि से जीर्ण (पुराना) घर जानना चाहिये। सन्निकृष्ट अर्थात् बलीग्रह के नजदीक में रहने वाले ग्रहों के द्वारा प्रतिभवन याने अन्य गृह का स्वरूप जाने। यहाँ यह विचारना है कि केन्द्रस्थ बली ग्रह के अनुसार सूतिकागृह का द्वार पूर्व में कहा गया है अतः उस घर के माध्यम से अन्य घरों का ज्ञान करना उचित है। बलीग्रह के सम्मुख सप्तम स्थान, दक्षिण चतुर्थ और वाम दशम स्थान हैं। इन स्थानों के ग्रहानुसार उपग्रह का विचार होगा। जो टीकाकार केवल सूर्यादि ग्रहों में अधिक बली से विचार किया है वह युक्ति-सङ्गत नहीं है॥ ७॥

सूतिकागृहभूमिकादिज्ञानम्—

गुरुरुच्चो दशमस्थो द्वित्रिचतुर्भूमिकं करोति गृहम्।
धनुषि सबलस्त्रिशालं द्विशालमन्येषु यमलेषु॥८॥

सं०—उच्चोंगुरुः=स्वोच्चराशिगतो गुरुः, दशमस्थः=लग्नात् दशमस्थानस्थितः, तदा द्वित्रिचतुर्भूमिकं=द्विभूमिकादिकं, गृहं=भवनं, करोति। सबलः =बलयुक्तो गुरुः, धनुषि=चापे, तदा त्रिशालं=त्रिशालयुक्तं, अन्येषु=परेषु, यमलेषु=द्विस्वभावराशिषु, यदा बलीगुरुस्तदा द्विशालं गृहं करोतीत्यर्थः॥ ८॥

हि०—कर्क राशि का गुरु यदि लग्न से १० में हो तो सूतिका गृह दो, तीन, चार आदि मञ्जिले पर होता है। यदि सबल गुरु धनु में हो तो त्रिशाल (३ बरामदा वाला) और अन्य द्विभाव राशि (मिथुन, कन्या, मीन) में रहने पर द्विशाल गृह होता है॥ ८॥

शय्याज्ञानम्—

षट्त्रिनवान्त्याः पादाः खट्वाङ्गान्यन्तरालभवनानि ।
विनतत्वं यमलर्क्षैः क्रूरैस्तत्तुल्य उपघातः ॥९॥

संस्कृत—षट्त्रिनवान्त्याः=लग्नात्षष्ठत्रिनवद्वादशराशयः, पादाः= खट्वायाः चरणानि, अन्तरालभवनानि=तन्मध्यस्थाः राशयः, खट्वाङ्गानि भवन्ति। अर्थात् लग्नराशिदिशि शिरः, तृतीयद्वादशौ पूर्वपादयोः क्रमेण दक्षिणवामौ, षष्ठनवमौ पश्चिम-पादयोः क्रमेण दक्षिणवामौ भवतः। शीर्षे १।२, दक्षिणाङ्गे ४।५, पादभागे ७।८, वामाङ्गे १०।११, एवं खट्वाङ्गानि ज्ञेयानि। तत्र यमलर्क्षैः=द्विस्वभावराशिभिः, विनतत्वं=विशेषेण नम्रीभूतं, क्रूरैः=पापग्रहैः, तत्तुल्यः=ग्रहतुल्यः, उपघातः,=आघातः, वक्तव्यः ॥ ९ ॥

हि०—जन्मलग्न से ६।३।९।१२ स्थान शय्या के चारो पाद होते हैं। इनकी बीचवाली राशियाँ अन्य अङ्ग होती हैं। जैसे शिरस्थान में १।२, ३ पूर्वभाग के दक्षिण पाद, ४।५ दक्षिणाङ्ग ६ पश्चिमभाग के दक्षिण पाद, ७।८ पाद भाग में, ९ पश्चिम के वाम पाद, १०।१० वामाङ्ग में और १२ पूर्वभाग के वाम पाद है। जहाँ द्विस्वभाव राशि पड़े वहाँ का भाग झुका हुआ और पापग्रह का स्थान आघात युत समझना चाहिये। शुभयुत दृष्ट राशि एवं अपनी उच्चादि राशियों में स्थित पापग्रह अशुभ फल नहीं देते ॥ ९ ॥

नालवेष्टिताङ्गज्ञानम्—

छागे सिंहे वृषे लग्ने तत्स्थे सौरेऽथवा कुजे ।
राश्यंशसदृशे गात्रे जायते नालवेष्टितः ॥१०॥

सं०—स्पष्टम्।

हि०—मेष, सिंह या वृष लग्न हो उसमें शनि अथवा मंगल रहे, तो लग्ननवांश राशि का अङ्ग नालवेष्टित होता है। काल पुरुष के अङ्गोक्त राशि यहाँ विचारना चाहिये ॥ १० ॥

सूतिकागृहादौ द्रव्यज्ञानम्—

ज्ञेयानि ताम्रमणिहेमयुक्तिरौप्याणि मौक्तिकं लोहम् ।
अर्काद्यैर्बलवद्भिः स्वस्थाने हेम जीवेऽपि ॥११॥

सं०—बलवद्भिः=सबलैः, अर्काद्यैः=सूर्यादिभिर्ग्रहैः, ताम्र-मणि-हेमादि-द्रव्याणि ज्ञेयानि, यथा सूर्यात् ताम्रं, चन्द्रात् मणयः, कुजात् सुवर्णं, बुधात् युक्तिः (कांस्यम्), जीवात् रौप्यं, शुक्रात् मुक्ताफलं, शनेः

लोहमिति। जीवे=गुरौ, स्वस्थाने=स्वगृहे, सति, हेम=सुवर्णं, अपि ज्ञेयम् ॥ ११ ॥

हि०—बलवान् सूर्यादि ग्रहों के क्रम से तामा, मणि, सोना, युक्ति (काँसा), रौप्य, मोती और लोह सूतिका गृह में जानना चाहिये। जैसे बली सूर्य से तामा, बली चन्द्र से मणि, बली कुज से काँसा, इसी तरह आगे जानना। यदि गुरु धनु या मीन राशि में हो तो सोना निश्चय रूप से जानना चाहिये ॥ ११ ॥

वि०—लोहा, काँसा और तामा के आभूषणों की प्रधानता नहीं है अतः सूतिका के आभूषण ज्ञान इससे करना उचित नहीं जान पड़ता।

उपसूतिकाज्ञानम्—

शशिलग्नान्तरसंस्थग्रहतुल्याश्चोपसूतिका ज्ञेयाः।
उदगर्धेऽभ्यन्तरगा बाह्याश्चक्रस्य दृश्येऽर्धे ॥१२॥

सं०—शशिलग्नान्तरसंस्थग्रहतुल्याः = चन्द्रलग्नयोर्मध्यस्थानस्थितग्रहसंख्यकसमानाः, उपसूतिकाः=सूतिकासमीपस्थाः स्त्रियः, ज्ञेयाः=विज्ञातव्याः तत्रायं विशेषः—चक्रस्य=राशिचक्रस्य, उदगर्द्धे=अदृश्यचक्रार्द्धेऽर्थात् लग्नसप्तमयोर्मध्ये, यावन्तो ग्रहा व्यवस्थितास्तावन्मिता,अभ्यन्तरगाः=गृहान्तस्थाः, दृश्येऽर्धे=दृश्यचक्रार्धे, सप्तमलग्नयोर्मध्ये यावन्तो ग्रहास्तत्संख्यका उपसूतिकाः, बाह्ये=बहिः, वक्तव्या ॥ १२ ॥

हि०—जन्मकुण्डली में लग्न और चन्द्र के बीच जितने ग्रह हों उतनी उपसूतिकायें होती हैं। जो ग्रह वक्री हो या उच्च में उसकी त्रिगुणित,स्ववर्गोत्तम-नवांश-द्रेष्काण-राशि में होने पर द्विगुणित संख्या जाननी चाहिये। दोनों प्राप्त होने पर त्रिगुणित जाने। नीच तथा अस्त में आधी कहनी चाहिये।

अदृश्य चक्रार्ध अर्थात् लग्न से सप्तम स्थान के मध्य में जितने ग्रह हों, उतनी संख्या घर के भीतर और दृश्यचक्रार्ध में यानें सप्तम स्थान से लग्न के बीच ग्रह की संख्या के अनुसार बाहर में उपसूतिका जाननी चाहिये ॥ १२ ॥

वि०—भट्टोत्पली टीका में लिखा है जो अदृश्यचक्रार्ध में लग्नचन्द्रान्तर्गत ग्रह संख्या तुल्य क्रम से भीतर और बाहर उपसूतिका होती है। यह विचारणीय है।

लग्न पर से उपसूतिका ज्ञान—

मेष-मीन में २, वृष-कुम्भ में ४, कर्क-धनु में ५, मकर, मिथुन, तुला, कन्या और वृश्चिक लग्न में ३ उपसूतिका होती है।

मार्गज्ञान—मेष, कर्क, तुला, वृश्चिक और कुम्भ लग्न में घर का पूर्व भाग,

मकर-सिंह में दक्षिण, वृष में पश्चिम और मिथुन, कन्या, धनु-मीन में उत्तर भाग जानना चाहिये।

वस्त्रादिज्ञान—लग्ननवांशेश रवि हो तो पुराना, चन्द्र से सफेद, मंगल से लाव फटाहुआ, बुध से रंगीन, गुरु से मूल्यवान् उत्तम, शुक्र से चित्रविचित्र, शनि से मलिन वस्त्र हो। शनि के समान राहु-केतु का भी जानें।

भोजनज्ञान—चतुर्थेश रवि में मधुर रूखा पदार्थ, चन्द्र में रसादि, मंगल में शुष्क पदार्थ, खट्टा, गुड़, दुग्ध, बुध में चित्र पदार्थ, गुरु में मधुर, उत्तम पदार्थ, शुक्र में दुग्धादि, शनि में कदन्न या भोजनाभाव जानें।

जातक-रोदनज्ञान—मेष, वृष, मिथुन, धनु और सिंह लग्न में विशेष रोदन, कुम्भ, कन्या, तुला में स्वल्प, वृष, कर्क, मकर, वृश्चिक में बालक नहीं रोता है।

छिक्का ज्ञान—लग्न से चतुर्थ चन्द्र बुध के साथ हो या इन दोनों की दृष्टि चतुर्थ में हो तो जातक जन्म समय में छींकता है।

प्रसवभागज्ञान—३।५।६।७।८।११ राशियों का लग्न में या नवांश में जन्म होने से मस्तक की तरफ से, मीन में हाथ, पृष्ठोदय (१।२।४।९।१०) राशि के लग्न या नवांश में पाँव की ओर से जन्म हो।

पितृ-मातृगृहज्ञान—दिन में क्रम से रवि शुक्र और रात में शनि, चन्द्र पितृ मातृ संज्ञक होते हैं। जो गृह बली हो उसके घर में जन्म जानें।

इति लघुजातके सूतिकाध्यायः षष्ठः॥

—०—

अरिष्टाध्यायः

चन्द्रकृदरिष्टम्

षष्टेऽष्टमेऽपि चन्द्रः सद्यो मरणाय पापसंदृष्टः ।
अष्टाभिः शुभदृष्टो वर्षैर्मिश्रैस्तदर्धेन ॥१॥

सं०—पापसंदृष्टः = अशुभग्रहावलोकितः, चन्द्रः = शशी, षष्ठेऽष्टमेऽपि = लग्नात् षष्ठे वा अष्टमस्थाने, स्थितः, तदा जातकस्य, मरणाय = निधनाय, भवति । शुभदृष्टः = शुभग्रहैरीक्षितः, चेत्तदा अष्टभिर्वर्षैः = गजाब्दैः, मिश्रैः = शुभाशुभग्रहैः, दृष्टस्तदा, तदर्धेन = वर्षचतुष्टयेन, निधनाय भवतीत्यर्थः ॥ १ ॥

हि०—पापग्रह से दृष्ट चन्द्र जिस जातक की जन्मकुण्डली में लग्न से ६।८ स्थान में हो उस जातक का शीघ्र निधन होता है। यदि शुभग्रह से दृष्ट हो तब ८ वर्ष में और शुभ पाप दोनों से चन्द्रमा देखा जाय तो ४ वर्ष में जातक की मृत्यु होती है ॥ १ ॥

वि०—शुक्ल पक्ष में रात्रि और कृष्णपक्ष में दिन का जन्म होने से षष्टाष्टम चन्द्र का दोष नहीं होता है ॥

अरिष्टान्तरम्

शशिवत्सौम्याः पापैर्वक्रिभिरवलोकिता न शुभदृष्टाः ।
मासेन मरणदाः स्युः पापजितो लग्नपश्चास्ते ॥२॥

सं०—वक्रिभिः पापैः = वक्रगतैर्पापग्रहैः, अवलोकिताः = दृष्टाः, सौम्याः = शुभग्रहाः, शशिवत् = चन्द्रवदर्थात् लग्नात्षष्ठे वा अष्टमे, स्थिताः, शुभदृष्टाः = शुभग्रहावलोकिताः, न, तदा मासेन = एकमासेन, मरणदाः = निधनप्रदाः, स्युः = भवेयुः, अथवा पापजितः = पापैर्विजितः, लग्नपः = लग्नेशः, अस्ते = = लग्नात्सप्तमस्थे, तदा मासेन निधनं भवतीति ॥ २ ॥

हि०—वक्री पापग्रह से दृष्ट शुभग्रह चन्द्रमा के समान अर्थात् लग्न से ६।८ में हों और उन पर शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तब एक मास में जातक की मृत्यु होती है। अथवा पापग्रह से पराजित लग्न का स्वामी यदि लग्न से सप्तम में हो तब भी जातक एक महीना तक ही जीता है ॥ २ ॥

अनिष्टान्तरम्

राश्यन्तस्थैः पापैः सन्ध्यायां हिममयूखहोरायाम् ।
मृत्युः प्रत्येकस्थैः केन्द्रेषु शशाङ्कपापैश्च ॥३॥

सं०—सन्ध्यायां=सन्ध्याकाले, हिममयूखहोरायां=चन्द्रहोरायां, पापैः =पापग्रहैः, राश्यन्तस्थैः=राश्यन्तिमनवांशगतैः, केन्द्रेषु=कण्टकेषु, वा, शशाङ्कपापैः=चन्द्रपापग्रहैः, प्रत्येकस्थैः=प्रतिकेन्द्र-स्थानगतैः, तदा जातकस्य मृत्युः=मरणं, भवति ॥ ३ ॥

हि०—सन्ध्या समय लग्न में चन्द्र की होरा हो और पापग्रह राशि के अन्तिम नवांश में हो तथा चन्द्र और पापग्रह लग्न से १।४।७।१० इन चारों स्थानों में हों तो जातक की मृत्यु होती है ॥ ३ ॥

अन्यारिष्टद्वययोगौ

चक्रप्राक्पश्चार्द्धे पापशुभैः कीटभोदये मृत्युः ।
निधनचतुष्टयगैर्वा क्रूरैः क्षीणे शशिन्युदये ॥४॥

सं०—कीटभोदये=कीटसंज्ञकराशिलग्ने, पापशुभैः=क्रूराक्रूरखगैः, चक्रप्राक्पश्चार्द्धे=भचक्रपूर्वापरविभागे, वा, क्रूरैः=पापैः निधनचतुष्टयगैः= अष्टमकेन्द्रस्थैः,क्षीणे शशिनि=क्षीणे चन्द्रे,उदये=लग्नगते,सति तदा जातकस्य निधनं स्यादिति ॥ ४ ॥

हि०—कीट (कर्क या वृश्चिक) लग्न हो और पापग्रह भचक्र के पूर्वार्द्ध में और शुभ ग्रह उत्तरार्द्ध में हो अथवा पापग्रह ५।१।४।७।१० इन स्थानों में हों और क्षीण-चन्द्र लग्न में हो तो निधन कारक होता है ॥ ४ ॥

वि—भट्टोत्पल ने लग्न के अंश तुल्य दशम भाव के अंश से चतुर्थ भाव के उतने अंश तक की राशि को भचक्र का पूर्वार्द्ध और शेष को उत्तरार्द्ध कहा है।

चन्द्रकृदरिष्टयोगः

सप्ताष्टान्त्योदयगे शशिनि सपापे शुभेक्षणवियुक्ते ।
न च कण्टकेऽस्ति कश्चिच्छुभस्तदा मृत्युरादेश्यः ॥५॥

सं०—शुभेक्षणवियुक्ते=शुभदृष्टिरहिते, सपापे=पापयुक्ते, शशिनि= चन्द्रे, सप्ताष्टान्त्योदयगे=सप्ताष्टमद्वादशलग्नान्यतमस्थानस्थे, कण्टके=केन्द्रे, कश्चिच्छुभः=शुभग्रहः, न च अस्ति, तदा जातकस्य मृत्युः=मरणं, आदेश्यः =वक्तव्यः ॥ ५ ॥

हि०—शुभग्रह दृष्टि रहित पापग्रह के साथ चन्द्रमा ८।८।१२।१ इन स्थानों में से किसी एक स्थान में हो और केन्द्र (१।४।७।१०) में कोई शुभ ग्रह न हो तो जातक की मृत्यु होती है ॥ ५ ॥

योगान्तरम्

क्षीणेन्दौ द्वादशगे लग्नाष्टमराशिसंस्थितैः पापैः ।
सौम्यरहिते च केन्द्रे सद्यो मृत्युर्विनिर्देश्यः ॥६॥

सं—क्षीणेन्दौ = क्षीणचन्द्रे, द्वादशगे = लग्नात् द्वादशस्थानगते सति, पापैः = पापग्रहैः, लग्नाष्टमराशिसंस्थितैः = लग्नाष्टमस्थानस्थैः, सौम्ये रहिते = शुभग्रहवर्जिते, केन्द्रे = कण्टके च, जातकस्य सद्यः = जन्मकाले एव, मृत्युः = निधनं, विनिर्देश्यः = आदेश्यः ॥ ६ ॥

हि०—क्षीणचन्द्र लग्न से द्वादश में हो और पापग्रह लग्न एवं अष्टम भाव में हो तथा केन्द्र में कोई शुभग्रह न हो तो जातक की तत्काल मृत्यु होती है ॥ ६ ॥

अरिष्टयोगद्वयम्

चतुरस्रे सप्तमगः पापान्तस्थः शशी मरणदाता ।
उदयगतो वा चन्द्रः सप्तमराशिस्थितैः पापैः ॥७॥

सं—शशी = चन्द्रः, पापान्तस्थः = पापग्रहद्वयमध्यगतः, चतुरस्रे सप्तमगः = चतुर्थाष्टमसप्तमस्थानान्यतमस्थानस्थितः, मरणदाता = निधनदा भवति । वा चन्द्रः, उदयगतः = लग्नस्थः, पापैः = पापग्रहैः, सप्तमराशिस्थितैः = लग्नात् सप्तमस्थैः, तदा मृत्युप्रदो भवति ॥ ७ ॥

हि०—पापग्रहों के मध्य में होकर चन्द्रमा यदि लग्न से ४।८।७ इन स्थानों में किसी एक स्थान में हो अथवा लग्न में चन्द्र हो और सप्तम में सभी पापग्रह हों तो जातक की मृत्यु होती है ॥ ७ ॥

अरिष्टान्तरम्

सोपप्लवे शशांके सक्रूरे लग्नगे कुजेऽष्टमगे ।
मृत्युर्मात्रा सार्द्धं चन्द्रवदर्के च शस्त्रेण ॥८॥

सं०— सोपप्लवे = राहुग्रस्ते, सक्रूरे = कुजातिरिक्तपापयुक्ते, शशाङ्के = चन्द्रे, कुजे = भौमे, अष्टमगे = लग्नादष्टमस्थे, तदा जातकस्य मात्रासार्द्धं = जनन्या सह, मृत्युः = मरणं, स्यात् । चन्द्रवत् = शशिना तुल्यं, अर्के, सूर्ये, सति शस्त्रेण मृत्युः स्यादिति ॥ ८ ॥

हि०—राहुग्रस्त चन्द्रमा पापग्रह से युत हो और लग्न से अष्टम में मंगल हो तो माता के साथ जातक का निधन होता है। यदि चन्द्र के समान रवि हो अथवा सूर्यग्रहण कालिक सूर्य पापग्रह के साथ हो और अष्टम में मंगल हो तो शस्त्र के द्वारा दोनों की मृत्यु होती है ॥ ८ ॥

वि०—भट्टोत्पल ने सक्रूरे का अर्थ केवल शनि किया है। यह विचारणीय है, क्योंकि आचार्य के अनुसार क्षीणचन्द्र, रवि, शनि, मंगल और पापयुत बुध ये पापग्रह हैं। मंगल का उपादान पृथक् होने से शेष पापग्रहों के बीच चन्द्र स्वतः योगकारक हैं अतः प्रथम योग में रवि-शनि दो पापग्रह होंगे और द्वितीय योग में रवि-मंगल के अतिरिक्त क्षीणचन्द्र और शनि होंगे। बुध तो उनके साथ में रहने पर पापग्रह होगा अतः उसकी प्रधानता नहीं है।

अन्य-योगाः

लग्न-द्वादश-नवमाऽष्टमसंस्थैश्चन्द्र-सौरि-सूर्याऽऽरैः ।
जातस्य भवति मरणं यदि न बलयुतः पतिर्वचसाम् ॥९॥

सं—चन्द्रसौरिसूर्यारैः=चन्द्रशनिरविभौमैः, क्रमेण, लग्न-द्वादश-नवमाष्टमसंस्थैः=तनुव्ययधर्मनिधनभावगतैः, वचसां पतिः=गुरुः, बलयुतः=सबलः, न, तदा जातस्य=शिशोः, मरणं=निधनं, भवतीति ॥ ९ ॥

हि०—यदि जन्म कुण्डली में चन्द्र, शनि, रवि और मंगल ये क्रम से लग्न, द्वादश, नवम और अष्टम स्थान में हों और बृहस्पति बलवान् न हो तो जातक की मृत्यु होती है ॥ ९ ॥

चन्द्रकृत् विशेषारिष्टयोगः

सुतमदननवान्त्यलग्नरन्ध्रेष्वशुभयुतो मरणाय शीतरश्मिः ।
भृगुसुतशशिपुत्रदेवपूज्यैर्यदि बलिभिर्न युतोऽवलोकितो वा १०॥

सं०—अशुभयुतः=पापग्रहयुक्तः, शीतरश्मिः=चन्द्रः, यदि सुतमदननवान्त्यलग्नरन्ध्रेषु = पञ्चमसप्तमनवमद्वादशप्रथमाष्टमस्थानेष्वन्यतमस्थानगतः, बलिभिः=बलयुक्तैः, भृगुसुतशशिपुत्रदेवपूज्यैः=शुक्रबुधगुरुभिः, युतः=युक्तः, वा अवलोकितः=दृष्टः, न, तदा जातकस्य मरणाय=निधनाय, भवतीत्यर्थः ॥ १० ॥

हि०—पापग्रह के साथ चन्द्रमा ५।७।९।१२।१।८ इन स्थानों में से किसी एक स्थान में हो और यदि बली शुक्र, बुध और गुरु से युत या दृष्ट न हो तब जातक का निधन होता है ॥ १० ॥

अनुक्तकालारिष्टज्ञानम्

योगे स्थानं गतवति बलिनश्चन्द्रे स्वं वा तनुगृहमथवा।
पापैर्दृष्टे बलवति मरणं वर्षस्यान्तः किल मुनिगदितम् ॥११॥

सं—योगे=अनुक्तकालारिष्टयोगे, बलिनः=बलयुक्तस्य ग्रहस्य, स्थानं=गृहं प्रति, वा स्वं=निजं, स्थानं=भवनं, प्रति, अथवा तनुगृहं=लग्नराशिं, प्रति चन्द्रे=शशाङ्के गतवति=गते सति, बलवति पापैः=सबलैः पापग्रहैः, दृष्टे=अवलोकिते, सति, वर्षस्यान्तः=वर्षमध्ये, किल=निश्चयेन, मुनिगदितम्=मुनिकथितं, मरणं=निधनं, वक्तव्यमिति ॥ ११ ॥

हि०—जिस योग में मृत्युकाल नहीं कहा गया है उस योग का फल एक वर्ष के भीतर ही होता है, परन्तु वह कब होगा यह जानने के लिये इस श्लोक में बताया है कि योगकारक ग्रहों में जो अधिक बली हो और वह जिस राशि में हो, उस राशि में जब बली पापग्रह से दृष्ट चन्द्रमा हो अथवा बली पाप ग्रह से दृष्ट जब अपनी राशि में जाय या बली पापदृष्ट चन्द्र जब लग्न की राशि में जाय तब वर्ष के भीतर जातक की मृत्यु होती है। ऐसा मुनियों ने बताया है॥ ११ ॥

वि-—प्रत्येक मास में चन्द्रमा का संचार बारहों राशियों में होता है, इस हेतु उक्त तीनों योगों की राशियों में चन्द्रमा वर्ष के प्रत्येक मास में रहेंगे। विशेषता यह है कि बली पापग्रह से जिस मास में दृष्ट होकर उक्त राशियों में रहेंगे उस महीना में निधनकारक होंगे। ज्योतिषी को चाहिये कि वर्षभर की चन्द्र की स्थिति तीनों प्रकार से देखें और जिस मास में विशेष बली पापग्रहों की दृष्टि उक्त राशिगत चन्द्र पड़ पड़े और शुभग्रह की दृष्टि न हो तब उस समय अरिष्टकाल का आदेश करें।

बालारिष्ट योग—

१—लग्न में मंगल द्वादश में गुरु और शत्रु गृही का शुक्र १ मास की आयु देते हैं।

२—क्षीणचन्द्र पापदृष्ट होकर लग्न में और २।१२ में मंगल १ मास में निधन-कारक होते हैं।

३—१।७ में क्रूर (रवि, केतु), २।१२ में पाप (श० मं०) और ४ में राहु १ सप्ताह में निधनकारक होते हैं।

४—१२ में शनि, १ में मंगल ४ में बुध होने से ८ मास की आयु होती है।

५—शुभ राशि में गुरु, ८ में शनि और पापग्रह हों तो शीघ्र मृत्यु होती है।

६—चन्द्र, रवि, शुक्र केन्द्र (१।४।७।१०) में और शनि के साथ बुध २ वर्ष की आयु देते हैं।

७—वक्री शुक्र मकर या कुम्भ में, रवि, बुध ७ में और शनि ११ में शीघ्र मरण कारक हैं।

८—गुरुदृष्ट शुक्र सिंह, मकर, कुम्भ में हो तो ९ वर्ष में मृत्यु कारक होते हैं।

९—शुभदृष्टिरहित चन्द्र के साथ रवि मिथुन या कन्या में हो तो ९ वर्ष में निधन कारक होते हैं।

१०—शुभदृष्ट बुध के साथ रवि चन्द्र हो तो ११ वर्ष में मृत्यु होती है।

११—शनि रविदृष्ट राहु ८ में हो और शुभ दृष्ट हो तो ८।१२ में मृत्युप्रद होते हैं।

१२—लग्न से द्वितीय में राहु; बुध, शुक्र, शनि, रवि हों तो पिता और पुत्र दोनों के लिये मृत्युप्रद होते हैं।

१३—१२ में राहु, शनि, बुध हो, लग्न में गुरु या पञ्चम में मृत्युकारक हैं।

१४—गुरु, रवि, राहु, मंगल मिथुन राशि में और ४ में शुक्र कष्टकारक हैं।

१५—शत्रु राशि के अष्टम भाव में पापदृष्ट पापग्रह हो तो १ वर्ष में मृत्यु होती है।

१६—वक्री शनि मेष या वृश्चिक में १।४।७।१०।६।८ में हो और मंगल से दृष्ट हो तो २ वर्ष की आयु होती है।

१७—राहु मंगल के साथ शनि ७ में और चन्द्र ९ में हों तो ७ दिन या ७ मास की आयु होती है।

१८—लग्न में रवि, ५ में चन्द्र और ८ में पापग्रह हों तो शीघ्र मरण होता है।

१९—पाप के साथ लग्नेश, पापग्रहों के बीच लग्न और लग्न से ७ में पापग्रह हो तो जातक नहीं बचता है।

२०—अशुभ राशि में गुरु और लग्न का स्वामी अस्त हो तब ७ वर्ष की आयु होती है।

२१—मकर-कुम्भ में रवि और सिंह में शनि होने से १२ वर्ष की आयु होती है।

२२—शत्रुक्षेत्री बुध ६।८।१ में होने से ४ वर्ष की आयु होती है।

२३—८ में राहु और केन्द्र (१।४।७।१०) में चन्द्र पापयुत दृष्ट होने से शीघ्र मृत्यु होती है।

२४—४ में राहु, ६।८ में चन्द्र शुभ दृष्ट से रहित हो तो २० दिन की आयु होती है।

२५—शत्रुक्षेत्री राहु ७।९ में हो तो १६ वर्ष की आयु होती है।

२६—१२ में चन्द्र, ८ में पापग्रह हो तो १ मास की आयु होती है।

२७—१।८ में चन्द्र दृष्ट राहु होने पर १० दिन की आयु होती है।

२८—नवम में रवि, ८ में शनि और ११ में शुक्र हो तो १ मास की आयु होती है।

२९—शत्रुक्षेत्री रवि २।६।८।१२ में हो तो ६ वर्ष की आयु होती है।

३०—शत्रुक्षेत्री बुध १।८।६ में होने से ४ वर्ष की आयु हो।

३१—मित्रक्षेत्री गुरु १०।११ में और शत्रुक्षेत्री शुक्र २।१२ में होने से २१ वर्ष में मृत्युकारक होते हैं।

३२—शत्रुक्षेत्री शनि २।६।८।१२ में होने से ८ दिन या ८ वर्ष की आयु होती है।

३३—पापदृष्टयुत राहु १।४।७।१० में हो तो १० या १६ वर्ष में मृत्यु हो।

३४—शनि-राहु-मंगल के साथ ७ में चन्द्र हो तो १ सप्ताह में निधन हो।

३५—मेष-वृश्चिक में गुरु और ६।८ में चन्द्र हो तो ६ या ८ वर्ष मे मृत्यु हो।

३६—१।७ में शनि और ८ में चन्द्र शीघ्र मृत्युकारक होते हैं।

३७—६।८ में चन्द्र और ७ में रवि एक मास में निधनकारक हैं।

३८—१२ में गुरु-शुक्र, १ में राहु और ७ में शनि १ वर्ष में मृत्युप्रद हैं।

३९—शत्रुक्षेत्री मंगल और रवि ८ में होने से १ मास में निधन हो।

४०—१ में सभी पापग्रह और ६।८ में चन्द्रमा शीघ्र मृत्युकारक हैं।

४१—६।८ में चन्द्र, १२ में रवि-मंगल शीघ्र मृत्युप्रद।

४२—४ में राहु, १।४।७।१० में चन्द्र २० वर्ष में मृत्युप्रद और ७ में राहु होने से १० वर्ष में मारक होता है।

४३—चन्द्रदृष्ट राहु १।८ में या १ में रवि, ५ में चन्द्र और १।८ में पापग्रह शीघ्र मृत्युकारक होते हैं।

४४—७ में चन्द्र, १।८ में पापग्रह, १ में रवि १ मास में मारक हैं।

४५—मेष-वृश्चिक में, गुरु और धनु-मीन में मंगल १२ वर्ष में मृत्युकारक हैं।

४६—शनि के साथ मंगल २ में और ३ में राहु १ वर्ष में मृत्युप्रद हैं।

४७—४ में राहु, ६।८ में चन्द्र या लग्न और सप्तम पापग्रह के बीच हो तो मृत्युकारक होता है।

४८—८ में चन्द्र, १।४।७।१०, में पापग्रह और ४ में राहु १ वर्ष में मारक हो।

४९—८।१।२।१२ में पापग्रह होने से ८ या १२ वर्ष में मृत्युप्रद।

५०—२।१०।४।७ में पापग्रह अपनी राशि का हो तो शीघ्र मृत्युप्रद।

५१—शुभदृष्टिरहित शनि के साथ मंगल १।६।७।८ में होने पर शीघ्र मारक होते हैं।

पारिवारिक अरिष्टविचार—

रवि से नवम पिता, चन्द्र से चतुर्थ माता, मंगल से तृतीय भाई, बुध से चतुर्थ मामा, गुरु से पञ्चम पुत्र, शुक्र से सप्तम स्त्री और शनि से अष्टम मृत्यु के स्थान हैं। इन स्थानों में पापग्रह के युत दृष्ट सम्बन्ध से या पापाक्रान्त होने से उनके अरिष्ट जानना चाहिये।

मातृगतारिष्ट विचार—

१—लग्न से चतुर्थ बली पापग्रह हों और केन्द्र मे शुभग्रह न पड़े तो मातृ-कष्ट हो।

२—पापयुक्त चन्द्र या पाप के बीच चन्द्र हो और चन्द्र से सप्तम पाप हो तो मातृकष्ट हो।

३—६।१२ में पापग्रह, या शनि मंगल के मध्य चन्द्र मातृकष्टकारक होते हैं।

४—२।१२ में पापग्रह या पापमध्य लग्न या चन्द्र पाप से युत हो और २ में पापग्रह हो तो मातृकष्ट हो।

५—पापग्रह के साथ चन्द्र से ८ में पापग्रह हो और उस पर बली पापग्रह की दृष्टि हो तो मातृनिधन हो।

६—लग्न में गुरु, द्वितीय में शनि और तृतीय में राहु हो तो मातृनिधन होता है।

७—सिंह में मंगल, तुला में शनि, कन्या में शुक्र और मिथुन में राहु होने से मातृनिधन हो।

८—११ में पापग्रह तथा ५ में शुक्र-चन्द्र हो तो मातृकष्टकारक है।

९—२ में रवि, राहु, शनि, शुक्र और बुध हो तो मातृकष्ट हो।

१०—नीच राशि में चन्द्र और शुक्र होने से मातृकष्ट हो।

११—१ में मंगल, ३।७ में रवि मातृकष्टकारक है।

१२—क्रूरदृष्ट पापग्रह ७।८ में होने से मातृकष्टप्रद है।

१३—४।७।१२ में बलीपापग्रह मातृकष्टप्रद होते हैं।

पितृगतारिष्ट—

१—चतुर्थ-दशम में पाप ग्रह एवं ७ में रवि १० में मंगल, १२ में राहु पितृ-कष्टकारक होते हैं।

२—धनु में रवि-शनि, मेष-कुम्भ में चन्द्र और मकर में शुक्र होने से पितृ-निधन-कारक होते हैं।

३—पापयुक्त या पापमध्यस्थ रवि से ७ में बली पापग्रह पितृनिधनकारक है।

४—शत्रुक्षेत्री मंगल दशम में हो या लाभ में गुरु, २ में शनि, रवि, मंगल, बुध होने से पितृकष्ट हो।

५—पितृकारक ग्रह पापमध्य या पाप से युत दृष्ट होने से पितृकष्ट हो।

॥ इति लघुजातके अरिष्टाध्यायः सप्तमः ॥

—०—

अथ अरिष्टभङ्गाध्यायः

गुरुकृदरिष्टभङ्गयोगः—

सर्वानिमानतिबलः स्फुरदंशुजालो
लग्नस्थितः प्रशमयेत्सुरराजमन्त्री ।
एको बहूनि दुरितानि सुदुस्तराणि
भक्त्या प्रयुक्त इव शूलधरप्रणामः ॥ १ ॥

सं०—अतिबलः = पूर्णबलवान्, स्फुरदंशुजालः=चञ्चत्किरणसमूहः, सुरराजमन्त्री=गुरुः, लग्नस्थितस्तदा इमान्=पूर्वोक्तान्, सर्वान् अरिष्टान् प्रशमयेत् । यथा भक्त्या प्रयुक्तः, एकः शूलधरप्रणामः बहूनि सुदुस्तराणि दुरितानि नाशयति तद्वत् इव ॥ १ ॥

हि०—पूर्णबली चमकीले किरणों से युक्त गुरु यदि लाभ में हो तो सभी अरिष्टों को नाश करते हैं। जैसे भक्तिपूर्वक एक बार किया हुआ शंकरजी का प्रणाम अनेक दुस्तर पापों को शमन करता है ॥ १ ॥

लग्नेशकृदरिष्टभङ्गयोगः—

लग्नाधिपोऽतिबलवानशुभैरदृष्टः
केन्द्रस्थितैः शुभखगैरवलोक्यमानः ।
मृत्युं विधूय विदधाति सुदीर्घमायुः
सार्द्धं गुणैर्बहुभिरूर्जितया च लक्ष्म्या ॥ २ ॥

सं०—अशुभैरदृष्टः केन्द्रस्थितैः शुभखगैरवलोक्यमानः अतिबलवान् लग्नाधिपश्चेत्तदा मृत्युं विधूय बहुभिर्गुणैः उर्जितया लक्ष्म्या च साधं सुदीर्घमायुः विदधाति ॥ २ ॥

हि०—पापग्रह से अदृष्ट और केन्द्रस्थ शुभग्रह से दृष्ट पूर्णबली लग्न का स्वामी हो तो अनेक गुणसहित वर्धमाना लक्ष्मी और दीर्घायु प्रदान कर मृत्यु को दूर करता है ॥ २ ॥

चन्द्रकृतरक्षायोगः—

लग्नादष्टमवर्त्यपि बुधगुरुभार्गवदृक्काणगश्चन्द्रः ।
मृत्युं प्राप्तमपि नरं परिरक्षत्येव निर्व्याजम् ॥ ३ ॥

सं०—स्पष्टम् ।

हि०—लग्न से अष्टम स्थान में चन्द्रमा रहने पर भी यदि बुध, गुरु या शुक्र के द्रेष्काण में हो तो मृत्युयोग प्राप्त जातक की भी अच्छी तरह रक्षा करता है ॥ ३ ॥

अन्ययोगः—

चन्द्रः सम्पूर्णतनुः सौम्यर्क्षगतः स्थितः शुभस्यान्तः ।
प्रकरोति रिष्टभङ्गं विशेषतः शुक्रसंदृष्टः ॥ ४ ॥

सं०—स्पष्टम् ।

हि०—शुभग्रहों के मध्य शुभराशि में पूर्णचन्द्र होने से अरिष्ट का नाश करता है । यदि शुक्र से दृष्ट हो तो विशेष रूप से अरिष्ट नाशक होता है ॥ ४ ॥

योगान्तरम्—

बुधभार्गवजीवानामेकतमः केन्द्रमागतो बलवान् ।
क्रूरसहायो यद्यपि सद्यो रिष्टस्य भङ्गाय ॥ ५ ॥

सं०—स्पष्टम् ।

हि०—पापग्रहों से युतदृष्ट रहने पर भी पूर्णबली बुध, शुक्र या गुरु यदि केन्द्र (१।४।७।१०) में हो तो शीघ्र अरिष्ट विनाशक होते हैं ॥ ५ ॥

षष्ठस्थचन्द्रापवादः—

रिपुभवनगतोऽपि शशीगुरुसितचन्द्रात्मजदृकाणस्थः ।
गरुड इव भोगिदष्टं परिरक्षत्येव निर्व्याजम् ॥ ६ ॥

सं—स्पष्टम् ।

हि०—लग्न से षष्ठस्थ चन्द्र यदि गुरु, शुक्र या बुध के द्रेष्काण में हो तो जैसे सर्पदंशित जीव की रक्षा गरुड़ करता है वैसे चन्द्र भी जातक की रक्षा करता है ॥६॥

अन्ययोगः—

सौम्यद्वयमध्यगतः सम्पूर्णः स्निग्धमण्डलः शशभृत् ।
निःशेषरिष्टहन्ता भुजङ्गलोकस्य गरुड इव ॥ ७ ॥

सं०—स्पष्टम् ।

हि०—स्निग्धमण्डल से युक्त पूर्णचन्द्र यदि शुभ ग्रह के मध्य में हो तो जिस तरह सर्पसमूह को गरुड़ नाश करता है उसी प्रकार अरिष्टसमुदाय को चन्द्र नष्ट करता है ॥७॥

षष्ठाष्टमस्थचन्द्रारिष्टभंगयोगः—

शशभृति पूर्णशरीरे शुक्ले पक्षे निशाभवे काले ।
रिपुनिधनस्थे रिष्टं प्रभवति नैवात्र जातस्य ॥ ८ ॥

सं०—स्पष्टम् ।

हि०—जिस जातक का जन्म शुक्ल पक्ष की रात्रि में पूर्णचन्द्र के समय हो तो लग्न कुण्डली में ६।८ में स्थित चन्द्र का अरिष्ट उसे नहीं लगता ॥ ८ ॥

सर्वारिष्टभंगयोगः—

प्रस्फुरितकिरणजाले स्निग्धामलमण्डले बलोपेते ।
सुरमन्त्रिणि केन्द्रगते सर्वारिष्टं शमं याति ॥ ९ ॥

सं०—स्पष्टम् ।

हि०—विकसित किरणसमूह एवं स्निग्ध स्वच्छ मण्डल से युत बली गुरु यदि केन्द्र (१।४।७।१०) में हो तो जातक के सभी अरिष्ट नाश होते है ॥ ९ ॥

अन्ययोगाः—

सौम्यभवनोपयाताः सौम्यांशकगाः सौम्यदृक्काणस्थाः ।
गुरुचन्द्रकाव्यशशिजाः सर्वेऽरिष्टस्य हन्तारः ॥ १० ॥

सं०—गुरुचन्द्रकाव्यशशिजाः=गुरुशशिशुक्रबुधाः, सर्वे ग्रहाः, सोम्यभवनोपयाताः=शुभराशिगताः, सौम्यांशकगाः=शुभनवांशस्थाः, सौम्यदृक्काणस्थाः=शुभग्रहद्रेष्काणगताः, तदा अरिष्टस्य=निधनकारकयोगस्य, हन्तारः=नाशकाः, भवन्ति ॥ १० ॥

हि०—यदि जन्मकाल में गुरु, चन्द्र, शुक्र और बुध ये सभी ग्रह शुभराशि के शुभनवांश एवं शुभग्रह के द्रेष्काण में रहें तो सर्वारिष्ट विनाशक होते हैं ॥ १० ॥

योगान्तरम्—

चन्द्राध्यासितराशेरधिपः केन्द्रे शुभग्रहो वापि ।
प्रशमयति रिष्टयोगं पापानि यथा हरिस्मरणम् ॥ ११ ॥

सं०—चन्द्राध्यासितराशेः=चन्द्रावस्थितगृहस्य, अधिपः=स्वामी, अपि, वा=अथवा, शुभग्रहः, केन्द्रे=कण्टके, स्थितश्चेत्तदा यथा हरिस्मरणं=विष्णुस्मरणं, पापानि=दुरितानि, प्रशमयति=विनाशयति, तथा अरिष्टयोगं नाशयतीत्यर्थः ॥ ११ ॥

हि०—जन्म समय में चन्द्र जिस राशि में हो उसका स्वामी अथवा कोई शुभग्रह यदि केन्द्र (१।४।७।१०) में हो तो जिस तरह विष्णु का स्मरण पापों को विनाश करता है उसी तरह जातक के अरिष्ट योगों को नाश करता है ॥ ११ ॥

योगान्तरम्—

पापा यदि शुभवर्गे सौम्यैर्दृष्टाः शुभेशवर्गस्थैः ।

निघ्नन्ति तदा रिष्टं पतिं विरक्ता यथा युवतिः ॥ १२ ॥

सं०—स्पष्टम् ।

हि०—जातक के जन्म के समय यदि अरिष्टकारक पापग्रह शुभग्रह के षड्वर्ग में हो और उसे शुभराशीशवर्गस्थ शुभग्रह देखता हो तो जैसे विरक्ता युवती अपने पति को मारती है उसी तरह अपने अरिष्ट को नाश करता है ॥ १२ ॥

राहुकृदरिष्टभंगयोगः—

राहुस्त्रिषष्ठलाभे लग्नात् सौम्यैर्निरीक्षितः सद्यः ।
नाशयति सर्वदुरितं मरुत इव तूलसंघातम् ॥ १३ ॥

सं०—स्पष्टम् ।

हि०—शुभग्रह से दृष्ट राहु यदि लग्न से ३।६।११ में हो तो जैसे रूई के ढेर को वायु नाश करता है उसी तरह सभी अरिष्टों को राहुग्रह विनाश करता है ॥ १३ ॥

अन्ययोगः—

शीर्षोदयेषु राशिषु सर्वे गगनाधिवासिनः सूतौ ।
प्रकृतिस्थश्चारिष्टं विलीयते घृतमिवाग्निस्थम् ॥ १४ ॥

सं०—सूतौ=जन्मकाले, गगनाधिवासिनः=आकाशस्थाः, सर्वे ग्रहाः, शीर्षोदयेषु राशिषु=शीर्षोदयसञ्ज्ञकभवनेषु, स्थितास्तदा अग्निस्थं घृतमिव प्रकृतिस्थारिष्टं, विलीयते=विनश्यतीत्यर्थः ॥ १४ ॥

हि०—जन्मकाल में सभी ग्रह यदि शीर्षोदयसंज्ञक (कन्या, तुला, वृश्चिक, मिथुन, सिंह, कुम्भ) राशि में हो तो जिस तरह आग में घी विलीन होता है उसी तरह निजकृत ग्रहों का अरिष्ट नाश होता है ॥ १४ ॥

अन्ययोगः—

तत्काले यदि विजयी शुभग्रहः शुभनिरीक्षितोऽवश्यम् ।
नाशयति सर्वारिष्टं मारुत इव पादपान् प्रबलः ॥१५॥

सं०—स्पष्टम् ।

हि०—जातक के जन्मसमय में यदि शुभ दृष्ट विजयी शुभ ग्रह हो तो समस्त अरिष्टों का नाश उसी तरह होता है जैसे प्रबल वायु वृक्षों को मूलसहित उखाड़ कर फेंक देता है ॥ १५ ॥

चन्द्रकृदरिष्टभंगयोगः—

पक्षे सिते भवति जन्म यदि क्षपायां

कृष्णे तथाऽहनि शुभाशुभदृश्यमानः ।
तं चन्द्रमा रिपुविनाशगतोऽपि यत्ना-
दापत्सु रक्षति पितेव शिशुं न हन्ति ॥ १६ ॥

सं०—यदि, सिते पक्षे=शुक्लपक्षे, क्षपायां=रात्रौ, कृष्णे=कृष्णपक्षे, अहनि=दिवसे, जन्म भवेत्, तथा शुभाशुभदृश्यमानः=शुक्ले शुभदृश्यमानः, कृष्णे पापदृश्यमानः, चन्द्रमा=शशी, रिपुविनाशगतः=षष्ठाष्टमगतः, अपि, त=जातकं, आपत्सु=कष्टेषु, यत्नात् रक्षति, यथा पिता शिशुं न हन्ति तथा इव ॥ १६ ॥

हि०—शुक्लपक्ष की रात्रि में और कृष्णपक्ष के दिन में जातक का जन्म हो और शुक्ल पक्ष में शुभ दृष्ट, कृष्ण में पाप दृष्ट चन्द्रमा यदि ६।८ में रहे भी तो उसको यत्नपूर्वक रक्षा करता है। जैसे पिता पुत्र की रक्षा करता है—मारता नहीं ॥ १६ ॥

विशेष—यदि लग्न से पंचम में चन्द्र, ९।५ में गुरु और १० में मंगल हो तो अरिष्ट नाश होता है। लग्न से ३।६ में तुला, कुम्भ या मकर राशि का शनि हो तो अरिष्ट नहीं होता।

जिसकी लग्नकुण्डली में वृष राशिस्थ राहु को तीन ग्रह और केतु को चार ग्रह देखे तथा गुरु, शुक्र-वृष में हो तो अरिष्ट नहीं होता। पूर्णबली बुध, गुरु या शुक्र केन्द्र (१।४।७।१०) में हो तो अरिष्ट नाशक होते हैं। उच्चराशि के शुभग्रह केन्द्र में हों अथवा ४।१०।१।९।११ में गुरु-शुक्र हो तो अरिष्ट नाश होता है। लग्न से ९।५।१।४।७।१० में धनु, मीन या कर्क राशि का ग्रह हो या मेष, वृष, कर्क लग्न में राहु हो अथवा लग्न से ३।६।११ में राहु हो और उसे शुभ ग्रह देखता हो तो अरिष्ट नाश हो। बली लग्न का स्वामी १।४।७।१०।३।११ में हो या ९।५ में बलवान् गुरु-शुक्र हो तो सभी अरिष्ट के नाशक होते हैं।

लग्न से ८ में चन्द्र होकर यदि बुध, गुरु या शुक्र के द्रेष्काण में हो अथवा ६ में चन्द्र शुभग्रह के द्रेष्काण में हो और शुभग्रह बली हो तो चन्द्रकृत अरिष्ट नहीं होता है। चन्द्र शुभग्रह के बीच में हो एवं शुभराशि में शुभनवांश एवं द्रेष्काण में गुरु, शुक्र, बुध या चन्द्र हो तो अरिष्टनाशक होता है।

यदि पापग्रह शुभग्रह से दृष्ट होकर शुभग्रह के वर्ग में पड़े तो अरिष्ट नाश करते हैं। शीर्षोदय राशि में सभी ग्रह हों या अगस्त्योदय का जन्म हो या ३।६।११।१२ में केतु हो तो अरिष्ट नाश होता है।

गुरु अपने द्रेष्काण में होकर स्वपृष्ठी का हो या कर्क लग्न में गुरु और केन्द्र में

शुक्र हो अथवा वृष में चन्द्र हो और शुभग्रह अपनी राशि में हो या मूलत्रिकोण में हो तो दीर्घायु हो।

लग्न से अष्टम में कोई ग्रह न हो, शुभ ग्रह केन्द्र में और गुरु लग्न में तथा कर्क-राशि अष्टम में पड़े पापग्रह की दृष्टि नहीं हो तब दीर्घायु हो।

यदि लग्न से ५।१० में गुरु, बुध, चन्द्र और शुक्र हो या ९।५ में गुरु, ७ में बुध और लग्न में शुक्र, चन्द्र हो तो दीर्घायु हो।

अष्टमस्थ ग्रहाधीननिधनप्रकार—

लग्न से अष्टम रवि अग्नि से, चन्द्र जल से, मंगल शस्त्र से, बुध ज्वर से, गुरु गुह्य रोग से, शुक्र धातु एवं क्षुधाविकार से और शनि तृषा एवं वायुविकार से निधन-कारक होते हैं।

इति लघुजातके अरिष्टभङ्गाध्यायोऽष्टमः ॥

—०—

अथ आयुर्दायाध्यायः

ग्रहाणामायुसाधनम्—

राश्यंशकला गुणिता द्वादशनवभिर्ग्रहस्य भगणेभ्यः ।
द्वादसहृतावशेषेऽब्दमासदिननाडिकाः क्रमशः ॥ १ ॥

सं०—ग्रहस्य=जन्मकालिकस्पष्टग्रहस्य, राश्यंशकलाः=राश्यादयः, द्वादशनवभिः=अष्टोत्तरशतेनाङ्केन,गुणिताः=विनिघ्नताः,कार्यास्ततः भगणेभ्यः =भगणात्मकाङ्केभ्यः, द्वादशहृताः=द्वादशभक्ताः, तदा अवशेषे, अब्दमासदिन-नाड़िकाः=वर्षमासदिनघटिकादिकाः, क्रमशः=क्रमेण, भवन्तीति ॥ १ ॥

हिन्दी—तात्कालिक स्पष्ट ग्रह की राश्यादि को १०८ से अलग-अलग गुणा कर उनमें विकलास्थानीय अंक को ६० से भाग देकर लब्धि को कलास्थानीय अंक में जोड़ दे और शेष को अलग रखे। फिर कलास्थान में ६० का भाग देकर लब्धि को अंशस्थान में जोड़े और शेष को अलग रखे। बाद में अंश स्थान में ३० का भाग देकर लब्धि को राशिस्थान के अंक में जोड़ दे और शेष को अलग रखे। फिर राशिस्थान में १२ का भाग देने से लब्धि भगण होगा और शेष मास होंगे। भगण को १९ से भाग देने से लब्धि को छोड़ दे शेष वर्ष होगा। इस तरह से शेष में वर्ष, मास, दिन, घटी और पल होते हैं। ये ग्रह की आयु होती है। इसी तरह सभी की आयु-साधन करनी चाहिये ॥ १ ॥

उदाहरण—स्पष्ट रवि की राश्यादि+४।२।५।१० है। प्रत्येक स्थान में १०८ से गुणा करने पर ४३२।२१६।५४०।१०८० हुए। इनको पूर्वोक्त रीति से सवर्णन करने पर भगणादि ३६।७।१५।१८।०० हुये। भगण ३६ को १२ से भाग दिया तो लब्धि ३ शेष शून्य हुआ। लब्धि को छोड़ देने से शेष वर्षादि ००।७।१५।१८।०० रवि की आयु हुई। इसी तरह अन्य ग्रहों की आयु होगी।

उपपत्ति—आगमोक्त प्रमाणानुसार एक राशि में ९नवांश और १ नवांश में १ वर्ष होने से ९ नवांश में ९ वर्ष होते हैं। १ वर्ष=१२ मास, अतः १ राशि में १२×९=१०८ मास। इस पर से अनुपात किया कि यदि १ राशि में १०८ मास

तो इष्ट राशि में इस तरह इष्टराशि सम्बन्धि मास आया= $\frac{१०८ \times इ० रा०}{१}$ एक

राशि में ३० अंश होते हैं अतः अनुपात द्वारा १ अंश सम्बन्धि मास लाने पर यह

स्वरूप हुआ = $\frac{१०८ मा० \times १ अंश}{३०}$ अब दिन जानने के लिए अनुपात किया कि यदि

१ मास में ३० दिन तो इष्ट मास में कितने दिन होंगे $=\frac{३० \text{ दि०} \times १०८ \times १ \text{ अं०}}{१ \times ३०}$

$=१०८=१$ अंश सम्बन्धि दिन। इस पर से इष्ट सम्बन्धि दिन $=\frac{१०८\text{दिन} \times \text{इ.अं.}}{१ \text{ अंश}}$

इसी तरह १ कला में १०८ घटी होती है अतः उसके द्वारा इष्ट कला सम्बन्धि घटिका $=\frac{१०८ \text{ घ०} \times \text{इ० क०}}{१ \text{ कला}}$। १ विकला में १०८ पला होती है अतः उसके द्वारा विकला सम्बन्धि पला होगी।

उपर्युक्त रीति के अनुसार राशि, अंश, कला एवं विकला को १०८ से गुणा करना सिद्ध होता है। इस हेतु ग्रह-राश्यादि को १०८ से गुणा करने पर क्रम से वर्षादिक मान ग्रह की आयु कही गयी है। १२ राशियों का १ भगण होता है। आयु-साधन में द्वादश राशि से अधिक का प्रयोजन न होने से भगण स्थान में १२ का भाग देकर शेष से वर्षज्ञान किया गया है।

लग्नायुःसाधनम्—

होरादायोऽप्येवं बलयुक्ताऽन्यानि राशितुल्यानि।
वर्षाणि संप्रयच्छत्यनुपाताच्चांशकादिफलम् ॥ २ ॥

सं०—एवं ग्रहायुःसाधनवत्, होरादयः=लग्नायुः, अपि=निश्चयेन, भवति। यदि बलयुक्ता होरा=सबलं लग्नं, तदा, राशितुल्यानि=लग्नभुक्तराशिसमानानि, अन्यानि=भिन्नानि, वर्षाणि=अब्दानि, संप्रयच्छति=ददाति, अनुपातात्=त्रैराशिकगणितात्, च, अंशकादिफलम्=अंशकलादीनां फलं, ज्ञेयमिति ॥ २ ॥

हि०—पूर्वोक्त ग्रहायुर्दायसाधन के अनुसार लग्नायुसाधन करना चाहिए। यदि पूर्णबलवान् लग्न हो तब लग्न के भुक्तराशितुल्य वर्ष और भुक्त अंशादि के वश अनुपात द्वारा मासादि फल होता है। भाव यह है कि १ अंश में १२ दिन, १ कला में १२ घटी और १ विकला में १२ पल होते हैं। इस हेतु अंश को १२ से गुणा करने पर दिन, कला को १२ से गुणा करने पर घटी और विकला को १२ से गुणा करने पर पल होगा। पल ६० से अधिक हो तो ६० का भाग देकर लब्धि को घटी में जोड़ दे। घटी ६० से विशेष हो तो उसमें ६० का भाग देकर लब्धि को दिन में जोड़ दे। दिन ३० से अधिक हो तो उसमें ३० का भाग देकर लब्धि को मास समझें और अग्रिम में शेषों को दिनादि समझें। इनको आयु वर्षादि में जोड़ने से लग्न की स्पष्टायु होती है।

उदाहरण—लग्न की स्पष्ट राश्यादि:=५।२।१।१० है। प्रथम प्रकार गृहायुर्दाय के अनुसार लग्न राश्यादि को १०८ से गुणा करने पर ५४०।२१६।१०८।१०८० हुए। अब सवर्णन करने से भगणादि ४५।३।२८।६।० हुए। भगण ४५ में १२ का भाग दिया तो लब्धि ३, शेष ९ हुआ। अतः लग्नायुर्दाय के वर्षादि ९।३।२८।६।०० हुए। यदि लग्न पूर्ण बलवान् होता तो द्वितीय प्रकार से वर्षादि लाकर इसमें जोड़ा जाता।

द्वितीय प्रकार—लग्न की भुक्त राशि ५ है अतः ५ वर्ष हुआ। शेष अंशादि को १२ से गुणा किया तो २।१।१०×१२=२४।१२।१२० दिनादि हुए। यहाँ १२० पल है अतः साठ का भाग दिया तो २ दण्ड और पल शून्य हुआ। २ को १२ दण्ड में जोड़ा तो १४ हुआ। दिन २४ है अतः मास शून्य हुआ। इनको ५ वर्ष में जोड़ने पर लग्नायुर्दाय के वर्षादि ५।००।२४।१४।०० हुए। इनको प्रथम लग्नायु में जोड़ा तो १४ वर्ष ४ मास २२ दिन २० घटी शून्य पल लग्न की स्पष्टायु हुई।

वि०—लग्नसहित सूर्यादि ग्रहों की आयुसाधन कर अलग-अलग रखकर फिर वक्ष्यमाण विधि से प्रत्येक का संस्कार करके सभी का योग करना चाहिये। योगफल तुल्य जातक की आयु होती है।

उपपत्ति—"किन्त्वत्र अंशप्रमितं ददाति" इस वचन के अनुसार लग्नभुक्त-नवांशराशितुल्य वर्ष होता है और अंशादि के अनुपात द्वारा मासादि होते हैं। बलवान् लग्न के लिये जो संस्कार कहा गया है वह आर्षवचनानुकूल है।

विशेषसंस्कारः—

वर्गोत्तमस्वराशिद्रेष्काणनवांशके सकृद्द्विगुणम्।
वक्रोच्चयोस्त्रिगुणितं द्वित्रिगुणत्वे सकृत्त्रिगुणम्॥ ३॥

सं०—यो ग्रहः स्ववर्गोत्तमनवांशे, स्वराशौ, स्वद्रेष्काणे वा स्वनवांशे स्थितो भवति तस्य ग्रहस्य द्विगुणमायुर्भवति। वक्रोच्चयोःवक्री स्वोच्चराशिस्थग्रहयोस्त्रिगुणितमायुः स्यात्,। द्वित्रिगुणत्वे प्राप्ते सकृदेकवारं त्रिगुणमायुर्भवतीति॥ ३॥

हि०—जो ग्रह अपना वर्गोत्तम, स्वराशि, निज द्रेष्काण या अपनी नवांशराशि में हो तो उसके आयुर्दाय वर्षादि को द्विगुणित और वक्री या अपनी उच्च राशि में होने से साधित आयु वर्षादि को त्रिगुणित करना चाहिये। यदि एक ग्रह को द्विगुणित और त्रिगुणित दोनों प्राप्त हो तो एक बार ही साधित आयु को त्रिगुणित करने से स्पष्टायु होगी॥ ३॥

उदाहरण—पूर्व में रवि की आयु ७ मास १५ दिन १८ घटी आयी है। रवि सिंह

राशि में है अतः स्वराशि का हुआ, इसलिए द्विगुणित किया तो १ वर्ष ३ मास ० दिन ३६ घटी आयु हुई।

नोट—वर्गोत्तम, स्वराशि, स्वद्रेष्काण और नवांश इनमें चाहे ग्रह १ में हो या विशेष में,, सर्वत्र केवल एक बार ही द्विगुणित आयु होगी। इसी अभिप्राय से श्लोक में 'सकृद्द्विगुणं' कहा गया है।

अन्यसंस्कारः—

त्र्यंशमवक्रो रिपुभे नीचेऽर्धं सूर्यलुप्तकिरणश्च।
क्षपयति स्वायुर्दायान्नास्तं यातौ रविजशुक्रौ ॥ ४ ॥

सं०—अवक्रः=मार्गीग्रहः, रिपुभे=शत्रुक्षेत्रे, स्थितस्तदा स्वायुर्दायात्, त्र्यंशं=तृतीयांशं, नीचे=स्वनीचराशौ, सूर्यलुप्तकिरणः=अस्तग्रहः, च अर्धं, आयु।, क्षपयति=विनाशयति। रविजशुक्रौ=शनिभार्गवौ, अस्तं यातौ=अस्तंगतावपि, न अर्धमायुः हरतः ॥ ४ ॥

हि०—मार्गीग्रह यदि शत्रु की राशि में हो तो अपनी आयु का तृतीयांश, नीचस्थ ग्रह तथा अस्त ग्रह अपनी आयु का आधा भाग विनाश करता है। शुक्र और शनि अस्त हो तो उनकी आयु यथावत् रहती है। अर्थात् गुरु, शुक्र और बुध के अस्त में आयु की हानि समझनी चाहिये ॥ ४ ॥

चक्रोत्तरार्धस्थग्रहाणां संस्कारः—

सर्वार्धत्रिचतुर्थेन्द्रियर्तुभागान् व्ययाद्धरन्त्यशुभाः।
सन्तोऽर्धमतो वामं बलवानेकर्क्षगेष्वेकः ॥ ५ ॥

सं०—अशुभाः=पापग्रहाः, व्ययात्=लग्नात् द्वादशस्थानात्. वामं=विपरीतक्रमेण, स्थिताश्चेत्तदा स्थानवशात्क्रमेण सर्वार्धत्रिचतुर्थेन्द्रियर्तुभागान्=सम्पूर्णार्ध-त्र्यंश-चतुर्थांश-पञ्चमांश-षष्ठांश-अंशान्, हरन्ति=नाशयन्ति। सन्तः=शुभग्रहाः, अतः=अस्मात्,अर्धं=प्रोक्तांशार्धं, आयुषो भागान्, हरन्ति। एकर्क्षगेषु=उक्तस्थानान्यतमस्थानेषु बहुषु ग्रहेषु, बलवान्=अधिकबली, एकः ग्रह एवं स्वायुर्दायमपहरतीति ॥ ५ ॥

हि०—पाप ग्रह यदि १२।११।१०।९।८।७ इन स्थानों में से किसी एक स्थान में हो तो क्रम से अपनी आयु का सम्पूर्ण, आधा, तृतीयांश, चतुर्थांश, पञ्चमांश और षष्ठांश हरण करते हैं। अर्थात् लग्न से १२ में सम्पूर्ण, ११ में आधा, १० में तृतीयांश, ९ में चतुर्थांश, ८ में पञ्चमांश और ७ में षष्ठांश हानि करते हैं। उक्त स्थानों में शुभ

ग्रह होने से स्थानोक्त अंशका आधा अर्थात् सम्पूर्ण में अर्द्ध, अर्द्ध में चतुर्थांश, तृतीयांश में षष्ठांश, चतुर्थांश में अष्टमांश, पञ्चमांश में दशमांश और षष्ठांश में द्वादशांश आयुकी हानि करते हैं। यदि एक स्थान में एक से अधिक ग्रह हों तो उनमें जो अधिक बली हो उसी को आयु की हानि होती है अन्य ग्रहों की नहीं ॥ ५ ॥

विशेष—लग्न सहित सभी ग्रहों के साधित आयुर्दाय के वर्षादि में उक्त रीति से वृद्धि था हानि का संस्कार कर जो शेष बचता है वह उसकी स्पष्ट आयु का प्रमाण होता है। सभी के स्पष्टायु वर्षादि के योग तुल्य जातक की स्पष्टायु होती है। फलादेश में केवल एक तरह की स्पष्ट आयु का आदेश नहीं करना चाहिये। अन्यान्य रीतियों से भी विचार कर विशेष मतानुसार आयु का निर्णय करना उचित है।

इति लघुजातके आयुर्दायाध्याय: नवम: ॥

—०—

अथ दशान्तर्दशाध्यायः

दशाप्रमाणम्—

शोध्यक्षेपविशुद्धः कालो यो येन जीविते दत्तः ।
स विचिन्त्या तस्य दशा स्वदशासु फलप्रदाः सर्वे ॥ १ ॥

सं०—शोध्यक्षेपविशुद्धः=हानिगुणनक्रियाभ्यां परिशुद्धः, यः, कालः=ग्रहायुर्दायवर्षादिरूपः समयः, येन=ग्रहेण, जीविते=जीवाय, दत्तः=दत्तवान् । स कालः, तस्य ग्रहस्य, दशा=पाककालः, विचिन्त्या=ज्ञेया । सर्वे ग्रहाः स्वदशासु=निजपाककालेषु, फलप्रदाः=शुभाशुभफलदाः, भवन्तीति ॥ १ ॥

हि०—हानि या द्विगुणित, त्रिगुणित संस्कार करके जो ग्रह के स्पष्ट आयु के वर्षादि हो वही उस ग्रह की दशा वर्षादि होती है। सभी ग्रह अपनी अपनी दशा में शुभाशुभ फल देते हैं ॥ १ ॥

उदा०—जैसे रवि की स्पष्टायु १ वर्ष ३ मास ३६ घटी सिद्ध हुई है अतः रवि की दशा उतनी ही होगी।

दशाक्रमः—

लग्नार्कशशाङ्कानां यो बलवांस्तद्दशा भवेत् प्रथमा ।
तत्केन्द्रपणफरापोक्लीमगतानां बलाच्छेषाः ॥ २ ॥

सं०—लग्नार्कशशाङ्कानां=लग्नरविचन्द्राणां, मध्ये यो ग्रहो, बलवान्=बली, तद्दशा=तस्य ग्रहस्य दशा, प्रथमा भवेत् । ततः, तत्केन्द्रपणफरापोक्लीमगतानां=दशापतेः केन्द्रपणफर-आपोक्लीम-स्थानस्थितानां ग्रहाणां, बलात्=बलाधिकवशात्, शेषाः=अवशिष्टाः, दशाः भवन्ति ॥ २ ॥

हि०—लग्न, रवि और चन्द्र इनमें यो अधिक बली हो उसकी पहली दशा होती है। उसके बाद दशेश से केन्द्र (१।४।७।१०) में स्थित ग्रहों के बलानुसार, बाद में, पणफर (२।५।८।११) में स्थित ग्रहों के बलानुसार, उसके बाद आपोक्लीम (३।६।९।१२) में स्थित ग्रहों के बलानुसार ग्रहों की दशा होती है ॥ २ ॥

शुभाशुभदशाज्ञानम्—

मित्रोच्चस्वगृहांशोपगतानां शोभना दशाः सर्वाः ।
स्वोच्चाभिलाषिणामपि न तु कथितविपर्ययस्थानाम् ॥ ३ ॥

सं०—स्पष्टम् ।

हि०—मित्र की राशि में अपनी उच्च राशि में, अपनी राशि में एवं अपनी राशि के नवांश में जो ग्रह हो उसकी दशा और उच्चाभिलाषी अर्थात् अपनी उच्च-राशि में जाने वाला ग्रह की दशा शुभद होती है। इनसे भिन्न स्थानस्थित ग्रह की दशा अशुभ होती है ॥ ३ ॥

शुभाशुभलग्नदशाज्ञानम्—

होरादशा दृकाणैः पूजितमध्याधमा चरे क्रमशः ।
द्विशरीरे विपरीता स्थिरे तु पापेष्टमध्यफला ॥ ४ ॥

सं०—चरे=चरराशौ, दृकाणैः=प्रथमद्वितीयतृतीयद्रेष्काणैः होरा-दशा=लग्नदशा, क्रमशः, पूजितमध्याधमा=पूजिता मध्यमा अधमा च, भवति । द्विशरीरे=द्विस्वभावराशौ, विपरीता=व्युत्क्रमा, अर्थात् प्रथमद्रेष्काणे अधमा, द्वितीये मध्यफला, तृतीये पूजिता (शुभा) भवति । स्थिरे=स्थिर-राशौ तु पापेष्टमध्यफला=अशुभेष्टमध्यफलदाः, अर्थात् स्थिरराशिलग्नगत-प्रथमद्रेष्काणे अशुभा, द्वितीये शुभदा, तृतीये मध्यफलदा च लग्नदशा भवतीति ज्ञेया ॥ ४ ॥

हि०—चरराशि लग्न में प्रथम द्रेष्काण हो तो शुभ, द्वितीय हो तो मध्यम और तृतीय हो तो अशुभ लग्न दशा होती है। द्विस्वभाव राशि के लग्न में इसका विपरीत अर्थात् प्रथम द्रेष्काण में अशुभ, द्वितीय में मध्यम और तृतीय में शुभ दशा होती है, स्थिर राशि के लग्न में प्रथम द्रेष्काण हो तो अशुभ, द्वितीय में शुभ और तृतीय में मध्यम लग्न दशा होती है ॥ ४ ॥

अन्तर्दशाविभागः—

एकर्क्षेऽर्धं त्र्यंशं त्रिकोणयोः सप्तमे तु सप्तांशम् ।
चतुरस्रयोस्तु पादं पाचयति गतो ग्रहः स्वगुणैः ॥ ५ ॥

सं०—एकर्क्षे=एकराशौ, गतः=स्थितः, ग्रहः, स्वगुणैः=निजगुणैः, अर्धं=दशेशदशान्तर्दशावर्षार्धं, त्रिकोणयोः=दशायतेर्पञ्चमनवमस्थयोः, त्र्यंशं=तृतीयांशं, सप्तमे=दशेशात्सप्तमे, तु,सप्तांशं=सप्तमांशम्, चतुरस्रयोस्तु=दशेशाच्चतुर्थाष्टमस्थयोः, पादं=चतुर्थांशं, पाचयति यद्येकस्याः बहवो ग्रहास्तदा तेषु योऽधिकबली स एव पाचयति । उक्तेषु स्थानेषु लग्नादपि स्थितो ग्रहः प्रोक्त-मंशं पाचयतीति ज्ञेयम् ॥ ५ ॥

हि०—दशापति के साथ जो ग्रह हों उनमें केवल अधिक बलवान् जो हो वह

आधा, दशेश से ९।५ में स्थित बली ग्रह तृतीयांश, सप्तम में सप्तमांश और ४।८ में स्थित बली ग्रह चतुर्थांश अपने गुणानुसार अन्तर्दशा का अधिकारी होता है। इसका निष्कर्ष यह है कि दशेश से १।५।९।७।४।८ इन स्थानों में स्थित ग्रह की अन्तर्दशा होती है। एक स्थान में विशेष ग्रह होने से सबसे अधिक बलवान् जो होगा उसी एक मात्र ग्रह की अन्तर्दशा होती है। यदि लग्न की दशा होगी तो लग्न से भी उक्त स्थान में स्थित ग्रह के अनुसार दशापाचक समझना चाहिये। दशापति की कितनी अन्तर्दशा होगी इसका निर्णय होने पर ही अन्य ग्रहों की अन्तर्दशा निकलेगी। इसके लिए आगे अन्तर्दशासाधन किया गया है ॥ ५ ॥

अन्तर्दशासाधनम्—

भागाः सदृशच्छेदैर्विवर्जिताः संयुता दशाच्छेदाः ।
प्रत्यंशा गुणकाराः पृथक् पृथक् चान्तर्दशास्ताः ॥ ६ ॥

सं०—सदृशच्छेदैर्विवर्जिताः=समच्छेदीकृतहररहिताः, भागाः=पाचकांशाः, संयुताः=युक्ताः, कार्यास्तदा, दशाच्छेदाः=दशाब्दस्य भाजकाः, भवन्ति। एवं प्रत्यंशाः=प्रत्येकभागाः, गुणकाराः=दशाब्दस्य गुणकाः, भवन्ति। ततो दशावर्षान्, पृथक्-पृथक्, गुणकेन संगुण्य भाजकेन विभज्य या लब्धयस्ताः ग्रहाणामन्तर्दशाः भवन्तीति ॥ ६ ॥

हि०—जिस ग्रह की जितनी आयु होती है, उसका वह अधिपति होता है अतः दशेश का पूरा भाग १/१ है। बाद में 'एकर्क्षेऽर्धं' इसके अनुसार १/२।१/३।१/४।१/८ ये उक्त स्थानों के अनुसार पाचकांश होते हैं। दशापति से १।५।९।७।४।८ इन स्थानों में रहने वाले ग्रह अन्तर्दशा के अधिकारी हैं। इस हेतु अन्तर्दशा वर्षादि जानने के लिए उक्त स्थान स्थित ग्रहों के साथ दशेश के अंशों को समच्छेद बनाकर छेद को छोड़ दे। अंश-स्थानीय अंको के योग तुल्य दशा वर्ष का भाजक और प्रत्येक अंशस्थानीय अंक गुणक होता है। बाद में दशावर्षादि को अलग अलग स्थानवश गुणक से गुणाकर और भाजक से भाग देने पर लब्धि वर्षादि प्रत्येक पाचक ग्रह की अन्तर्दशा होती है ॥ ६ ॥

वि०—दशापति के आयुर्दाय-वर्षादि को अलग अलग अपने गुणक से गुणाकर पल स्थान में ६० का भाग देकर घटी स्थान में लब्धि जोड़कर उसमें ६० का भाग देकर लब्धि को दिन स्थान में जोड़कर उसमें ३० का भाग देकर लब्धि को मास के स्थान में जोड़कर उसमें १२ का भाग देकर लब्धि को वर्ष स्थान में जोड़कर उसमें भाजक से भाग देकर लब्धि वर्ष, शेष को १२ से गुणाकर उसमें मासस्थानीय शेष अंक जोड़कर उसमें पूर्व भाजक से भाग देने पर लब्धि मास, शेष को ३० से गुणा और दिनस्थानीय अंक जोड़कर पूर्व भाजक से भाग देने से लब्धि दिन, शेष को ६० से

गुणाकर घटीस्थानीय शेष जोड़कर पूर्व भाजक से भाग देकर लब्धि घटी होगी। इसी तरह पल भी होगा। यह वर्षादि जिस ग्रह के गुणक से गुणा किया हो उसकी अन्त-र्दशा होगी।

उदाहरण—निम्नलिखित कुण्डली में लग्न, रवि और चन्द्र में रवि बलवान् है अतः रवि की दशा प्रथम होगी। स्पष्टरवि की राश्यादि ४।१।५।१० है। इसकी स्पष्ट आयु वर्षादि बनाने पर १ वर्ष ३ मास ०० दिन ३६ घटी हुई। यह रवि की दशा-वर्षादि है।

लग्नकुण्डली—रवि के बाद उससे केन्द्रस्थ ग्रहों में बलानुसार शनि और चन्द्र की दशा होगी। इसके बाद पणकर (२।५।८।११) में रवि से केवल द्वितीय में मंगल, शुक्र और पञ्चम में लग्न है अतः वक्र के क्रम से शुक्र, मंगल और लग्न की दशा होगी। इसके बाद आपोक्लीम (३।६।९।१२) में रवि से बुध और गुरु हैं। इनसे बली गुरु के बाद बुध की दशा होगी। सभी को क्रम से लिखने पर
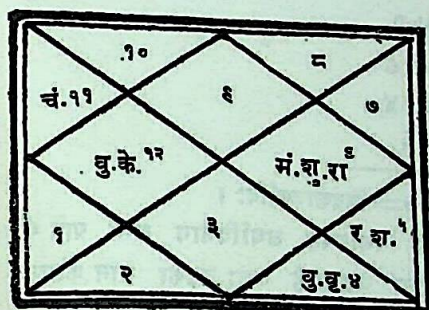
रवि के बाद क्रम से शनि, चन्द्र, शुक्र, मंगल, लग्न गुरु और बुध की दशा होगी।

अन्तर्दशाविचार—

उपरोक्त कुण्डली में दशापति रवि के साथ शनि है तथा उससे ५ में लग्न, ७ में चन्द्र है और ९।४।८ में कोई ग्रह नहीं है अतः रवि की दशा में रवि, शनि, लग्न और चन्द्र की ही अन्तर्दशा होगी। रवि का अंश $=\frac{१}{१}$। शनि का $\frac{१}{२}$, लग्न का $\frac{१}{३}$ और चन्द्र का $\frac{१}{७}$ हुआ। इनका समच्छेद करने पर—

$$\frac{१}{१}+\frac{१}{२}+\frac{१}{३}+\frac{१}{७}=\frac{४२}{४२}+\frac{२१}{४२}+\frac{१४}{४२}+\frac{६}{४२}।$$

अंशों का योग=४२+२१+१४+६=८३=भाजक।

रवि का गुणकांश ४२, शनि का २१, लग्न का १४ और चन्द्र का ६ हुआ। हर का प्रयोजन न होने से छोड़ दिया गया। अब रवि की दशा में रवि की अन्त-र्दशा निकालनी है अतः रवि की दशा वर्षादि १।३।००।३६ को रवि का गुणकांश ४२ से गुणा किया तो १।३।००।३६×४२=४२।१२६।००।१५१२ सवर्णन करने पर वर्षादि=५२।६।२५।१२ हुए। इसमें भाजक ८३ का भाग देने से लब्धि वर्षादि

रवि की दशा में रवि की अन्तर्दशा=०।७।१८।००।५२ हुई। रवि में शनि की अन्तर्दशा जानने के लिए दशावर्षादि को शनि का गुणक २१ से गुणा कर भाजक ८३ का भाग देने पर—१।३।००।३६ × २१=२१।६३।००।७५६=२६।३।१२।३६। इसमें ८३ का भाग देने पर लब्धि वर्षादि=००।३।२४।००।२८=रवि में शनि की अन्तर्दशा। इसी तरह क्रिया करने पर रवि में लग्न की अन्तर्दशा वर्षादि=००।२।१६।००।१४। एवं चन्द्र की अन्तर्दशा वर्षादि=००।१।२।३४।२६ हुई। इनका योग दशावर्ष के समान होता है जैसे—

रविदशा में अन्तर्दशा विभाग—

र० र० =वर्षादि=००।७।१८।००।५२
र० श० = ,, =००।३।२४।००।२८
र० लग्न= ,, =००।२।१६।००।१४
र० चन्द्र= ,, =००।१।२।३४।२६

योग वर्षादिः=१।३।००।३६।००=रविदशावर्षादिः।

उपपत्तिः—दशापति की अन्तर्दशा में स्थानवश अर्धादिभाग अन्य ग्रहों की अन्तर्दशा होती है। दशापति की अन्तर्दशा अज्ञात है अतः उसका मान कल्पना किया=या। अब पाचक ग्रहानुसार न्यास करने पर—

$$\frac{\text{या}}{१} + \frac{\text{या}}{२} + \frac{\text{या}}{३} + \frac{\text{या}}{७} + \frac{\text{या}}{४}$$ । समच्छेद कर

इन सबों का योग = $$\frac{१६८\ \text{या}}{१६८} + \frac{८४\ \text{या}}{१६८} + \frac{५६\ \text{या}}{१६८} + \frac{२४\ \text{या}}{१६८} + \frac{४२\ \text{या}}{१६८}$$

$$=\frac{\text{या} \times ३७४}{१६८}$$ । परञ्च अन्तर्दशा योग=महादशा वर्षादि

अतः $$\frac{\text{या} \times ३७४}{१६८} = \text{म० द० व०}$$

अतः $$\text{या} = \frac{१६८ \times \text{म० द० व०}}{३७४}$$ । अब अनुपात किया यदि १ यावत् में यह तो पूर्वोक्त यावत्तावद् के भाग में क्या होगा ? ऐसा करने पर स्वरूप—

$$\frac{१६८ \times \text{म. द. व.}}{३७४} + \frac{८४ \times \text{म. द. व.}}{३७४} + \frac{५६ \times \text{म. द. व.}}{३७४} +$$

$$+ \frac{२४ \times \text{म. द. व.}}{३७४} + \frac{४२ \times \text{म. द. व.}}{३७४}$$

यहाँ ३७४=अंश योग । द्वितीयादि स्थानों में दशापति की अन्तर्दशा के भाग से गुणित दशावर्ष भाज्यस्थान में और अंश योग हर स्थान में है अतः अन्तर्दशा साधन प्रकार उपपन्न हुआ । इसी तरह अन्तर्दशा मान के वश प्रत्यन्तर्दशा होगी ।

प्रत्यन्तर्दशा आदि साधन—

जिसकी अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा निकालनी हो उसकी अन्तर्दशा को अलग अलग अंशों से गुणाकर अंशयोग से अन्तर्दशा साधन के अनुसार भाग देने पर लब्धि प्रत्यन्तर्दशा होगी । इसी तरह सूक्ष्म दशा आदि भी निकालनी चाहिये ।

इति लघुजातके दशान्तर्दशाध्यायः दशमः ॥

—०—

अथाष्टकवर्गाध्यायः

सूर्याष्टकवर्गः—

केन्द्रायाष्टद्विनवस्वर्कः स्वादार्किभौमतश्च शुभः ।
षट्सप्तान्त्येषु सितात् षडायधीधर्मगो जीवात् ॥ १ ॥
उपचयगोऽर्कंश्चन्द्रादुपचयनवमान्त्यधीगतः सौम्यात् ।
लग्नादुपचयबन्धुव्ययस्थितः शोभनः प्रोक्तः ॥ २ ॥

सं०--अर्कः=सूर्यः, स्वात्=स्वस्थानात्, आर्किभौमतश्च=शनिकुजाभ्यां च, केन्द्रायाष्टद्विनवसु=केन्द्रैकादशाष्टमद्वितीयनवस्थानेषु, शुभः=शुभफलदः, सितात्=शुक्रात्, षट्सप्तान्त्येषु=षष्ठसप्तद्वादशेषु, जीवात्=गुरोः, षडायधीधर्मगः=षष्ठैकादशपञ्चमनवमेषु, चन्द्रात्, उपचयगः=त्रिषष्ठैकादशदशस्थानगतः, सौम्यात्=बुधात्, उपचयनवमान्त्यधीगतः=त्रिषष्ठैकादशदशनवमद्वादश पञ्च स्थानेष्वर्कस्थितः, लग्नात्=जन्मलग्नात्, उपचयबन्धुव्ययस्थितः=उपचयस्थानसहितचतुर्थद्वादशस्थानगतः, अर्कः, शोभनः=शुभदः, प्रोक्तः=कथितः ॥ १-२ ॥

हि०—जन्मकुण्डली में जिस स्थान में रवि हो उस स्थान से १।४।७।१०।११।८।२।९ इन स्थानों में गोचर विचार से जब रवि जायगें तब शुभद होंगे । इसी तरह शनि और मंगल से उक्त स्थानों के रवि शुभ होते हैं । शुक्र से ६।७।१२, गुरु से ६।११।५।९, चन्द्र से ३।६।११।१०, बुध से ३।६।११।१०।९।१२।५, और लग्न से ३।६।११।१०।४।१२ इन स्थानों के रवि शुभ होते हैं । इनसे भिन्न स्थानों के रवि अशुभ हैं ॥ १-२ ॥

विशेष—सूर्यादि सप्तग्रह और लग्न इन आठों का शुभाशुभ विचार जिसमें हो उसका नाम अष्टकवर्ग है । जन्मकुण्डली के ग्रह अपने स्थान से किन स्थानों में जाने से शुभ या अशुभ होते हैं, इसका विचार इसमें किया गया है । अष्टवर्ग के अनुसार जिस समय ग्रह स्थितिवश शुभ और अशुभ दोनों उपस्थित हों उसमें विशेष ग्रह का फलादेश और समान में मध्यम जानना चाहिये । प्रत्येक ग्रह का उक्त रीति से विचार कर शुभ स्थान में रेखा और अशुभ स्थान में बिन्दु लिखना चाहिये । इस तरह कुण्डली के प्रत्येक स्थान में आठ आठ बिन्दु तथा रेखायें होंगी । जिस स्थान में रेखा अधिक हो उस

स्थान में जाने पर ग्रह का शुभ फल और अधिक विन्दुवाला स्थान में अशुभ फल होता है। अष्टकवर्ग से आयु का भी विचार होता है।

उदाहरण—यहाँ रवि का अष्टकवर्ग विचारना है अतः उक्त श्लोक के अनुसार निम्नलिखित कुण्डली में रवि के शुभ स्थान में रेखा और अशुभ स्थान में विन्दु का चिह्न दिया गया है। जैसे रवि अपने स्थान से १।४।७।१०।११।८।२।९ इनमें शुभ है अतः शुभ का चिह्न रेखा लगाया गया। ३।५।६।१२ इनमें अशुभ है अतः विन्दु लगाया। इसी तरह अन्य ग्रहों के स्थानों से विचार कर रेखा तथा शून्य दिया गया है। कुछ लोग शुभ का चिह्न विन्दु और अशुभ का चिह्न रेखा मानते हैं। परन्तु उसमें बहुमत नहीं है। वैसा करने पर भी विचार में कोई अन्तर नहीं पड़ता। दोनों प्रक्रियाएँ ठीक हैं।

जन्मलग्नकुण्डली—यहाँ रवि का अष्टकवर्ग विचार किया गया है। श्लोक के
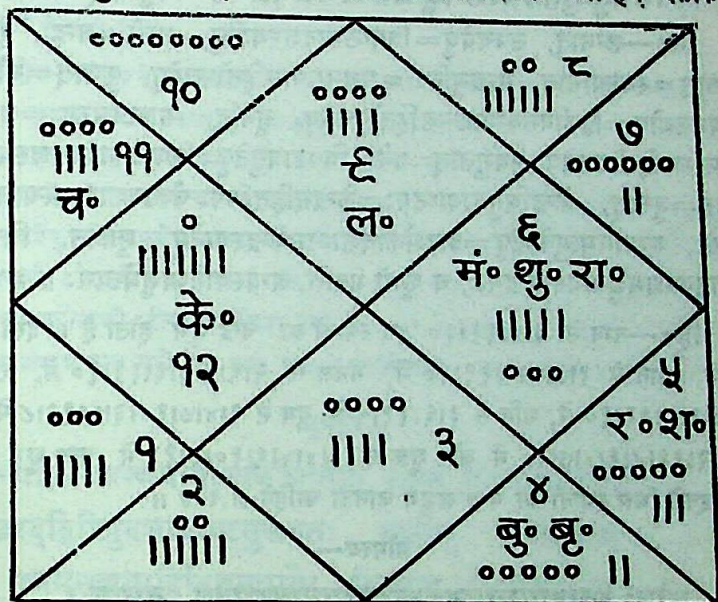
अनुसार शुभस्थान में रेखा और अशुभ स्थान में शून्य लिखा है। रवि सिंह राशि में है अतः सिंह, तुला, मकर, और कर्क राशि में शून्य अधिक होने से जातक के लिए इन राशियों का रवि अशुभ होगा। मीन, वृष, मेष, वृश्चिक और कन्या में रेखा अधिक होने से इन राशियों का सूर्य शुभ होगा। इनमें मीन, वृष और वृश्चिक राशि में शून्य से अधिक क्रम से ६, ४, ४ रेखायें हैं और मेष में २ और कन्या में २ रेखा अधिक है अतः मीन (चैत्र), वृष (ज्येष्ठ), वृश्चिक (मार्ग), ये मास विशेष शुभद और मेष (वैशाख), कन्या (आश्विन), ये पूर्वापेक्षया न्यून शुभद होंगे। मिथुन, धनु,

कुम्भ में रेखा और शून्य समान हैं इस हेतु इन राशियों का सूर्य मध्यम रहेगा। कर्क, सिंह, तुला, मकर में शून्य अधिक हैं अतः इन राशिओं का सूर्य अशुभ होगा। १ शून्य में अष्टमांश अशुम और १ रेखा में अष्टमांश शुभ जानना चाहिये। इसके अनुसार शुभाशुभ फलादेश जानें। इसी तरह अन्य ग्रहों का अष्टवर्ग विचार करना चाहिये।

चन्द्रस्य—

शश्युपचयेषु लग्नात्साद्यमुनिः स्वात्कुजात्स्वनवधीषु ।
सूर्यात् साष्टस्मरगस्त्रिषडायसुतेषु सूर्यसुतात् ॥ ३ ॥
ज्ञात्केन्द्रत्रिसुतायाष्टगो गुरोर्व्ययायमृत्युकेन्द्रेषु ।
त्रिचतुःसुतनवदशमद्युनायगश्चन्द्रमाः शुक्रात् ॥ ४ ॥

सं०—लग्नात्, उपचयेषु=त्रिषष्ठैकादशस्थानेषु, शशी=चन्द्रः, शुभः। स्वात्=स्वस्थानात्, साद्यमुनिः,=प्रथमसप्तसहितोपचयेषु, कुजात्=भौमात्, स्वनवधीषु=द्वितीयनवमपञ्चमसहितोपचयेषु, सूर्यात्, साष्टस्मरगः=अष्टमसप्तमसहितोपचयेषु, सूर्यसुतात्=शनेः, त्रिषडायसुतेषु=त्रिषष्ठैकादशपञ्चस्थानेषु, ज्ञात्=बुधात्, केन्द्रत्रिसुतायाष्टगः=केन्द्रसहितत्रिपञ्चैकादशाष्टमस्थानगतः, गुरोः, व्ययायमृत्युकेन्द्रेषु=द्वादशैकादशाष्टमकेन्द्रस्थानेषु, शुक्रात्, त्रिचतुःसुतनवदशमद्युनायगश्चन्द्रमाः, च शुभो भवति, अन्यस्थानेष्वशुभेत्यर्थः ॥ ३-४ ॥

हि०—लग्न से ३।६।११।१० इन स्थानों का चन्द्र शुभ होता है। इसी तरह अपने स्थान से १।७।३।६।११।१० में, मंगल से २।९।५।३।६।११।१० में, रवि से ८।७।३।६।११।१० में, शनि से ३।६।११।५ में, बुध से १।४।७।१०।३।५।११।८ में, गुरु से १२।११।८।१।४।७।१० में और शुक्र से ३।४।५।९।१०।७।११ में चन्द्र शुभ होता है। इनसे भिन्न स्थानों का चन्द्र अशुभ जानना चाहिये ॥ १-४ ॥

भौमस्य—

भौमः स्वादायस्वाष्टकेन्द्रगस्त्र्यायषट्सुतेषु बुधात् ।
जीवाद्दशाय–शत्रु–व्ययेष्विनादुपचय–सुतेषु ॥ ५ ॥
उदयादुपचयतनुषु त्रिषडायेष्विन्दुतः समो दशमः (०)
भृगुतोऽन्त्यषडष्टायेष्वसितात् केन्द्रायनववसुषु ॥ ६ ॥

सं०—स्वात्=स्वस्थानात्, भौमः=कुजः, आयस्वाष्टकेन्द्रगः=एकादशद्वितीयाष्टमसहितकेन्द्रस्थानगतः, शुभः। एवं बुधात्, त्र्यायषट्सुतेषु=तृतीयैकादशषट्पञ्चमस्थानेषु, जीवात्=गुरोः, दशायशत्रुव्ययेषु=दशमेकादशषष्ठद्वादश-

स्थानेषु, इनात्=सूर्यात्, उपचयसुतेषु=उपचयस्थानसहितपञ्चमस्थानेषु, उदयात् = लग्नात्, उपचयतनुषु=प्रथमसहोपचयस्थानेषु, इन्दुतः= चन्द्रात्, त्रिषडायेषु - त्रिषष्ठैकादशेषु, दशमः=दशमस्थश्चन्द्रात्कुजः समः= मध्यमः, भृगुतः=शुक्रात्, अन्त्यषडाष्टायेषु=द्वादशषष्टाष्टैकादशेषु, असितात्= शनेः, केन्द्रायनववसुषु=केन्द्रसहितैकादशनवमाष्टमेषु, भौमः शुभो भवतीत्यर्थः ॥ ५-६ ॥

हि०--अपने स्थान से मंगल ११।२।८।१।४।७।१० इन स्थानों में, बुध से ३।११।६।५ में, गुरु से १०।११।६।१२ में, रवि से ३।६।११।१०।५ में, लग्न से ३।६।११।१०।१ में, चन्द्र से ३।६।११ में शुभ और दशम में मध्यम होता है। इसी तरह शुक्र से १२।६।८।११ में, और शनि से १।४।७।१०।११।९।८ में मंगल रहने से शुभ होता है ॥ ५-६ ॥

विशेष—मंगल के अष्टकवर्ग में चन्द्र से दशम मंगल को सम कहा गया है। किसी ने इसका विरोध किया है जो सङ्गत नहीं है। सत्याचार्य ने भी 'चन्द्रान्मध्यम दशमषष्ठसहजलाभेषु' यह कहा है अतः दशम स्थान मध्यम है। भट्टोत्पल ने बृहज्जातक के भौमाष्टकवर्ग की व्याख्या में लिखा है कि 'चन्द्राद्दिग्विफलेषु चन्द्रस्थानादेष्वेवोपचयेषु दिग्विफलेषु दशमस्थानवर्जितेषु तेन दशम स्थानेन शुभं मध्यशुभं फलं करोतीत्यर्थः। इससे स्पष्ट होता है कि दशम रहित स्थान समझते हुये विशेष अर्थ का प्रतिपादन भट्टोत्पली टीका में किया गया है। आर्षवचनानुसार चन्द्र से दशम मंगल शुभ या अशुभ फल नहीं देता अतः मूल में 'समोदशमः' यह पाठ उचित ही है ॥

बुधस्य—

सौम्योऽन्त्यषण्णवायात्मजेष्विनात् स्वात् त्रितनुदशयुतेषु।
चन्द्राद्द्विरिपुदशायाष्टसुखगतः सादिषु विलग्नात् ॥ ७ ॥
प्रथमसुखायद्विनिधनधर्मेषु सितात् त्रिधीसमेतेषु।
साशास्मरेषु सौरारयोर्व्ययायरिपुवसुषु गुरोः ॥ ८ ॥

सं०—इनात्=सूर्यात्, सौम्यः=बुधः, अन्त्यषण्णवायात्मजेषु=द्वादशषष्ठनवमैकादशपञ्चमेषु, स्वात्=स्वस्थानात्, त्रितनुदशयुतेषु=तृतीयप्रथमदशमयुतोक्तस्थानेषु, चन्द्रात्, द्विरिपुदशायाष्टसुखगतः=द्विषष्ठदशमैकादशाष्टचतुर्थेषु, विलग्नात्=लग्नात्, सादिषु=प्रथमस्थानसहितप्रोक्तस्थानेषु, सितात्=शुक्रात्, प्रथमसुखायद्विनिधनधर्मेषु=प्रथमचतुर्थैकादशद्वितीयाष्टमनवमेषु, त्रिधीसमेतेषु=तृतीयपञ्चमसहितेषु, सौरारयोः=शनिमङ्गलाभ्यां,

नाशास्मरेषु = दशमसप्तमसहितपूर्वोक्तस्थानेषु, गुरोः, व्यायरिपुवसुषु=द्वादशैकादशषष्ठाष्टमेषु, शुभः ॥ ७-८ ॥

हि०—सूर्य से बुध १२।६।९।११।५ में, अपने स्थान से १२।६।९।११।५।३।१।१० में, चन्द्र से २।६।१०।११।८।४ में, लग्न से २।६।१०।११।८।४।१ में, शुक्र से १।४।११।२।८।९।३।५ में, शनि और मङ्गल से १।४।११।२।८।९।३।५।१०।७ में और गुरु से १२।११।६।८ में बुध शुभ होता है। अन्य में अशुभ ॥ ७-८ ॥

गुरोः—

जीवो भौमाद्द्वचायाष्टकेन्द्रगोऽर्कात्सधर्मसहजेषु ।
स्वात् सत्रिकेषु शुक्रान्नवदशलाभस्वधीरिपुषु ॥ ९ ॥
शशिनः स्वरत्रिकोणार्थलाभगस्त्रिरिपुधीव्ययेषु यमात् ।
नवदिक्सुखाद्यधीस्वायशत्रुषु ज्ञात्सकामगो लग्नात् ॥१०॥

सं०—भौमात् = कुजात्, द्व्यायाष्टकेन्द्रगः = द्वितीयैकादशाष्टकेन्द्रस्थानगतः, अर्थात्, सधर्मसहजप्रोक्तस्थानेषु, स्वात्=स्वस्थानात्, सत्रिकेषु=तृतीयसहितप्रथमोक्तस्थानेषु, शुक्रात्, नवदशलाभस्वधीरिपुषु=नवमदशमैकादशद्वितीयपञ्चमषष्ठेषु, शशिनः=चन्द्रात्, स्वरत्रिकोणार्थलाभगः=सप्तनवपञ्चद्वयेकादशगतः, यमात् = शनेः, त्रिरिपुधीव्ययेषु=त्रिषष्ठपञ्चद्वादशेषु, ज्ञात्=बुधात्, नवदिक्सुखाद्यधीस्वायशत्रुषु=नवदशचतुर्थप्रथमपञ्चद्विएकादशषष्ठेषु, लग्नात्, सकामगः=सप्तमसहितोक्तस्थानगतः, जीवः=गुरुः, शुभो भवति ॥ ९-१० ॥

हि०—मंगल से गुरु २।११।८।१।४।७।१० में, रवि से २।११।८।१।४।७।१०।९।३ में, अपने स्थान से २।११।८।१।४।७।१०।३ में, शुक्र से ९।१०।११।२।५।६ में, चन्द्रमा से ७।९।५।२।११ में, शनि से ३।६।५।१२ में, बुध से ९।१०।४।१।५।२।११।६ में और लग्न से ९।१०।४।१।५।२।११।६।७ में रहने से शुभ होता है ॥ ९-१० ॥

शुक्रस्य—

शुक्रो लग्नादासुतनवाष्टलाभेषु सव्ययश्चन्द्रात् ।
स्वात्सदिगसितात्त्रिसुखात्मजाष्टदिग्धर्मलाभेषु ॥ ११ ॥
वस्वन्त्यायेष्वर्कान्नवदिग्लाभाष्टधीस्थितो जीवात् ।
ज्ञात्त्रिसुतनवायारिष्वायसुतापोऽक्लिमेषु कुजात् ॥ १२ ॥

सं०—लग्नात्, आसुतनवाष्टलाभेषु=प्रथमादिपञ्चसहनवाष्टैकादशेषु, चन्द्रात्, सव्ययः=द्वादशसहितोक्तस्थानगतः, स्वात्=स्वस्थानात्, सदिग्=दशम-

संहितप्रोक्तस्थानेषु, असितात्=शनेः, त्रिसुखात्मजाष्टदिग्धर्मलाभेषु=त्रिचतुर्थपञ्चमाष्टदशनवैकादशेषु, अर्कात्, वस्वन्त्यायेषु=अष्टमद्वादशैकादशेषु, जीवात्, नवदिग्लाभाष्टधीस्थितः=नवदशैकादशाष्टपञ्चस्थानगतः, ज्ञात्=बुधात्, त्रिसुतनवायारिषु=त्रिपञ्चनवमैकादशषष्ठेषु, कुजात्, आयसुतापोक्लीमेषु=एकादशपञ्चत्रिषष्ठनवमद्वादशेषु, शुक्रः शुभः स्यादिति ॥ ११-१२ ॥

हि०—लग्न से १।२।३।४।५।९।८।११ में, चन्द्र से १।२।३।४।५।९।८।११।१२ में, अपने स्थान से १।२।३।४।५।९।८।११।१० में, शनि से ३।४।५।८।९।१०।११ में, रवि से ८।१२।११ में, गुरु से ९।१०।११।८।५ में, बुध से ३।५।९।११।६ में और मंगल से ११।५।३।६।९।१२ में शुक्र हो तो शुभ है ॥ ११-१२ ॥

शनैश्चरस्य—

स्वात्सौरिस्त्रिसुतायारिगः कुजादन्त्यकर्मसहितेषु ।
स्वायाष्टकेन्द्रगोऽर्काच्छुक्रात्षष्ठान्त्यलाभेषु ॥ १३ ॥
त्रिषडायगः शशाङ्कादुदयात्ससुखाद्यकर्मगोऽथ गुरोः ।
सुतषट्व्ययायगो ज्ञात् व्ययायरिपुदिङ्नवाष्टस्थः ॥ १४ ॥

सं०—स्वात्=स्वस्थानात्, सौरिः=शनिः, त्रिसुतायारिगः=त्रिपञ्चमैकादशषष्ठस्थानगतः, कुजात्, अन्त्यकर्मसहितेषु=द्वादशदशमसहितप्रोक्तस्थानेषु, अर्कात्, स्वायाष्टकेन्द्रगः=द्वितीयैकादशाष्टकेन्द्रस्थानगतः, शुक्रात्, षष्ठान्त्यलाभेषु=षष्ठद्वादशैकादशेषु, शशाङ्कात्=चन्द्रात्, त्रिषडायगः=त्रिषष्ठैकादशगतः, उदयात्=लग्नात्, ससुखाद्यकर्मगः=चतुर्थप्रथमदशमसहितपूर्वोक्तस्थानगतः, अथ गुरोः, सुतषट्व्ययायगः=पञ्चषट्द्वादशैकादशगतः, ज्ञात्=बुधात्, व्ययायरिपुदिङ्नवाष्टस्थः=द्वादशैकादशषष्ठदशमनवमाष्टमस्थानस्थः, शुभो भवति ॥ १३-१४ ॥

हि०—अपने स्थान से शनि ३।५।११।६ में, मंगल से ३।५।११।६।१२।१० में, रवि से २।११।८।१।४।७।१० में शुक्र से ६।१२।११ में, चन्द्र से ३।६।११ में, लग्न से ३।६।११।४।१।१० में, गुरु से ५।६।११।१२ में, बुध से १२।११।६।१०।८।९ में, शुभ होता है ॥ १३-१४ ॥

विशेष—आचार्य ने लग्न का अष्टकवर्ग नहीं कहा है परन्तु आयुसाधन में इसकी आवश्यकता है अतः नीचे दिया जाता है । अष्टकवर्ग का विचार पाराशर में उत्तम है अतः जिज्ञासुओं को वहाँ देखना चाहिये । प्रत्येक ग्रह से लग्न के जो शुभ स्थान कहे

गये हैं, वे स्थान लग्न से भी उन ग्रहों के शुभद होते हैं। लग्नाष्टक वर्ग में कहीं एक स्थान विशेष है। इसी से वराहमिहिर ने अलग प्रतिपादन नहीं किया। गोचर विचार या वर्ष फल के विचार में जब मासारम्भ कालिक एवं वर्षारम्भ कालिक कुण्डली बनेगी तब जो लग्न होगा वह जन्म लग्न से गिनती करने पर भिन्न होगा। उसमें भी जन्म लग्न से वह यदि ३।६।१०।११ में हो तब शुभद होगा अन्यथा अशुभ। यह स्थिति कम समय में होगी अतः विशेष अशुभ ही होगा। इस हेतु स्वल्पान्तर से लग्न का अष्टकवर्ग नहीं लिखा गया।

लग्नाष्टवर्ग—

सूर्य से ३।४।६।१०।११।१२ में, चन्द्र से ३।६।१०।११।१२ में, अपने स्थान से ३।६।१०।११ में, मंगल से १।३।६।१०।११में, बुध से १।२।४।६।८।१०।११ में गुरु से १।२।४।५।६।७।९।१०।११ में, शुक्र से १।२।३।४।५।८।९ में, और शनि से १।३।४। ६।१०।११ में लग्न हो तो शुभ होता है।

अष्टकवर्गशुभाशुभज्ञानम् —

स्थानेष्वेतुषु शुभाः शेषेष्वहिता भवन्ति चाष्टानाम्।
अशुभशुभविशेषफलं ग्रहाः प्रयच्छन्ति चारगताः॥ १५॥

सं०—अष्टानां=अष्टकवर्गानां, एतेषु=पूर्वोक्तेषु, स्थानेषु=भवनेषु, शुभाः= शोभनाः, शेषेषु=अन्येषु, अहिताः=अशुभाः, भवन्ति। तत्र चारगताः= राशिसंचारवशाद्गताः, ग्रहाः, अशुभशुभविशेषफलं=विन्द्वधिकवशाद्विशेषमशुभं फलं, रेखाधिकवशाच्छुभफलं, प्रयच्छन्ति=ददतीत्यर्थः॥ १९॥

हि०—लग्नसहित सूर्यादि सप्तग्रहों के अष्टकवर्ग में जो स्थान कहे गये हैं उन स्थानों में राशि संचार वश जब ग्रह जाते हैं तब शुभ फल देते हैं। उनसे भिन्न स्थानों में जाने से अशुभ फल प्रदान करते हैं। यहाँ यह विचारना चाहिये कि उक्तरीति से से प्रत्येक ग्रहों का अष्टकवर्ग चक्र बनाकर प्रत्येक राशि के विन्दु और रेखा देखकर दोनों का अन्तर कर जो अधिक हो अर्थात् विन्दु अधिक में अशुभ और रेखा अधिक में शुभ फल जानें। प्रत्येक राशि में रेखा और विन्दु का योग आठ होता है। इस हेतु १ रेखा में अष्टमांश शुभ और १ विन्दु में अष्टमांश अशुभ फल होगा। इसी के अनुसार तारतम्य से शुभाशुभफलादेश कर्तव्य है॥ १५॥

विशेष—अष्टकवर्गानुसार गोचर में ग्रह कब फल देगा इसका विचार यह है कि प्रत्येक ग्रह का राशि भोगकाल का अष्टमांश एक कोष्ठक का मान होता है जैसे—

सूर्य का	अष्टमांश मासादि		=००।३।४५=	१ को० मा०
चन्द्र का	,,	,,	=००।००।१७=	,, ,,
मंगल का	,,	,,	=००।५।३७=	,, ,,
बुध का	,,	,,	=००।३।४५=	,, ,,
गुरु का	,,	,,	=१।१८।४५=	,, ,,
शुक्र का	,,	,,	=००।३।४५=	,, ,,
शनि का	,,	,,	=३।२२।००=	,, ,,

संचार वश जिस राशि में ग्रह जाय उस राशि में शून्य और रेखा के विचार से अष्टमांश काल के अनुसार शून्य से अशुभ और रेखा से शुभ काल का निर्णय होता है।

सर्वाष्टकविचार—

अष्टकवर्ग के आठों कुण्डली से राशि के अनुसार प्रत्येक राशि के विन्दु एवं रेखा का योग कर जन्म कुण्डली की राशियों में क्रम से लिख दें। जन्मलग्न को प्रथम वर्ष, द्वितीय को दूसरा, तृतीय स्थान को तीसरा इसी तरह आगे जाने। बारह वर्ष के बाद फिर लग्न से वर्ष होगा। जिस वर्ष की राशि में विन्दु अधिक हो उस वर्ष में अशुभ और रेखाधिक वर्ष में शुभ जानना चाहिये। प्रत्येक राशि में ३ रेखा तक अशुभ ४ में मध्यम और उसके ऊपर शुभ फल कहा गया है।

सर्वाष्टकवर्ग की रेखा १४ से लेकर २६ तक की रेखा में अशुभफल उससे अधिक में शुभ फल होता है। प्रत्येक ग्रह की रेखा और बिन्दु के अनुसार शुभाशुभ विचार ग्रन्थान्तर में देखना चाहिये। यहाँ ग्रन्थ विस्तार के भय से नहीं लिखा गया है।

अष्टकवर्ग से आयु का विचार—

प्रत्येक अष्टवर्ग की कुण्डली में रेखा विहीन राशि के २ दिन, १ रेखा की राशि में डेढ़ दिन अर्थात् १ दिन ३० दण्ड, २ रेखा में १ दिन, ३ रेखा में आधादिन (३० दण्ड), ४ रेखा में ७ दिन ३० दण्ड, ५ रेखा में २ वर्ष, ६ रेखा में ४ वर्ष, ७ रेखा में ६ वर्ष और ८ रेखा में ८ वर्ष जानें। इस तरह प्रत्येक अष्टकवर्ग चक्र से आयु निकाल कर सबों का योग कर उसका आधा करने पर अष्टवर्ग की स्पष्ट आयु के वर्षादि होते हैं।

उदाहरण—पूर्व में रवि का अष्टकवर्ग कुण्डली बनाई है उसमें धनुलग्न में ४ रेखा है अतः उसकी आयु ७ दिन ३० दण्ड हुआ। कुम्भ और मिथुन में भी ४ रेखा है अतः उतनी ही होगी। मीन में ७ रेखा की आयु ६ वर्ष, मेष में ५ रेखा की आयु २ वर्ष वृष में ६ रेखा की आयु ४ वर्ष, कर्क में २ रेखा की आयु १ दिन, सिंह में ३ रेखा की

आयु ३० दण्ड, कन्या में ५ रेखा की आयु २ वर्ष, तुला में २ रेखा की १ दिन, और वृश्चिक की ६ रेखा की आयु ४ वर्ष हुई।

सबों का योग करने पर—

१८ वर्ष शून्य मास २५ दिन और शून्य दण्ड हुआ। इसका आधा करने पर ९ वर्ष १२ दिन और ३० दण्ड रवि की स्पष्ट आयु हुई। इसी तरह अन्य चक्रों की आयु साधन कर सभी के योग तुल्य जातक की स्पष्ट आयु होती है।

इति लघुजातके अष्टकवर्गाध्याय एकादशः ॥

अथ प्रकीर्णध्यायः

अनफासुनफाद्यो योगाः—

रविवर्ज्यं द्वादशगैरनफा चन्द्राद्‌द्वितीयगैः सुनफा ।
उभयस्थितैर्दुरुधरा केमद्रुमसंज्ञकोऽतोऽन्यः ॥ १ ॥

सं०—चन्द्रात्, रविवर्ज्यं=सूर्यरहितं, द्वादशगैः=द्वादशस्थानस्थितैर्ग्रहैः अनफायोगोभवति, द्वितीयगैः=चन्द्रात्द्वितीयस्थानगतैर्ग्रहैः, सुनफायोगो भवति । उभयस्थितैः=चन्द्रात् द्वादशद्वितीयस्थैर्ग्रहैः, दुरुधरा योगो भवति । अतोऽन्यः= अस्माद्भिन्नः केमद्रुमसंज्ञको योगो भवति । एवं चत्वारो योगाः भवन्ति ॥ १ ॥

हि०—जन्मकुण्डली में चन्द्र से द्वादश स्थान में, रवि को छोड़कर अन्य ग्रह होने से अनफा योग एवं चन्द्र से द्वितीय स्थान में कोई ग्रह रवि-रहित होने से सुनफा योग, तथा चन्द्र से द्वादश और द्वितीय में रवि के अतिरिक्त ग्रह होने से दुरुधरा योग और चन्द्र से १२।२ में कोई ग्रह होने से चतुर्थ केमद्रुम योग होता है ॥ १ ॥

वि०—श्रुतिकीर्ति, जीवशर्मा आदि आचार्यों ने अन्य प्रकार से अनफादि योगों का वर्णन किया है जो सर्वमान्य नहीं है जैसे—

चन्द्राच्चतुर्थः सुनफा दशमस्थितः कीर्तितोऽनफा विहगैः ।
उभयस्थितैर्दुरुधरा केमद्रुमसंज्ञितोऽन्यथा योगः ॥

चन्द्रमा के नवांशराशिवश उक्त योग--

यद्राशि संज्ञे शीतांशुर्नवांशे जन्मनि स्थितः ।
तद्‌द्वितीयस्थितैर्योगः सुनफाख्यः प्रकीर्तितः ॥
द्वादशैरनफा ज्ञेयो ग्रहैर्द्विद्वादशस्थितैः ।
प्रोक्तो दुरुधरा योगोऽन्यथा केमद्रुमः स्मृतः ॥

केमद्रुम योग का फल अशुभ कहा गया है परन्तु उसका परिहार देखकर निश्चय करना चाहिये । ग्रन्थकार ने वृहज्जातक में लिखा है कि—'केन्द्रे शीतकरेऽथवा ग्रहयुते- केमद्रुमो नेष्यते' अर्थात् लग्न से केन्द्र में चन्द्र हो या किसी ग्रह के साथ चन्द्र हो तो केमद्रुम योग नहीं होता ।

अन्य केमद्रुम भंग योग—

१—चन्द्र या शुक्र केन्द्र में हो और गुरु से दृष्ट हो तो केमद्रुम योग नहीं होता ।
२—गुरु दृष्ट चन्द्र शुभ ग्रह के साथ या शुभग्रह के मध्य में हो तो केमद्रुम भंग होता है ।

३—गुरु दृष्ट चन्द्र अधिमित्र या अपनी उच्च राशि या इन दोनों में किसी एक के नवांश में हो तो केमद्रुम का भंग होता है।

४—शुभ ग्रह के साथ पूर्ण चन्द्र बुध की उच्चराशि कन्या में हो और उसे गुरु देखता हो तो केमद्रुम भंग होता है।

५—विशेष शुभग्रह से दृष्ट चन्द्र हो अथवा किसी ग्रह के साथ हो अथवा लग्न से १।४।७।१० में हो तो केमद्रुम योग भंग होता है।

ग्रहवश उक्त योगों का भेद विचारने से अनफा और सुनफा के भेद ३१ होते हैं। दुरुधरा के १८० भेद होते हैं।

अनफादि योगानां फलानि—

सच्छीलं विषयसुखान्वितं प्रभुं ख्यातियुक्तमनफायाम्।
सुनफायां धीधनकीर्तियुक्तमात्मार्जितैश्वर्यम् ॥२॥
बहुभृत्यकुटुम्बारम्भं सुखभोगान्वितं च दौर्धरिके।
भृतकं दुःखितमधनं जातं केमद्रुमे विद्यात् ॥ ३ ॥

सं०—अनफायां=अनफायोगे सच्छीलं=शोभनस्वभावोपेतं, विषयसुखान्वितं=व्यावहारिकसर्वसुखोपेतं प्रभुं=समर्थं, ख्यातियुक्तं=कीर्तियुक्तं, स्यात्। सुनफायां=सुनफायोगे, जातं=उत्पन्नं, धीधनकीर्तियुक्तं=बुद्धिधनप्रख्यातियुक्तं, आत्मार्जितैश्वर्यम्=स्वोपार्जितविभवं, भवति। दौर्धरिके=दुरुधरायोगे, बहुभृत्यकुटुम्बारम्भं=विविधभृत्यकुटुम्बकार्यारम्भयुक्तं, सुखभोगान्वितं=सुखविलासोपेतं, च भवति। केमद्रुमे=केमद्रुमयोगे, जातं, भृतकं=भृत्यकर्मकरं, दुःखितं=दुःखान्वितं, अधनं=धनरहितं, च विद्यात्=जानीयात् ॥ २-३ ॥

हि०—अनफा योग में जातक सुन्दर स्वभाव वाला सभी तरह के सुख से युक्त, पराक्रमवान् और यशस्वी होता है। सुनफा योग में जातक बुद्धिमान् धनवान्, यशस्वी, तथा अपने पराक्रम से ऐश्वर्यवान् होता है।

दुरुधरा योग में अनेक भृत्यों एवं कुटुम्बों से युक्त अनेक शुभकार्य आरम्भ करनेवाला और सुखी होता है। केमद्रुम योग में सामान्य भृत्यकर्म से आजीविका चलानेवाला, दुःखी और धनहीन होता है ॥ २-३ ॥

वि०—जातक पारिजात में केमद्रुम योग का भेद निम्न है—

१—गुरु दृष्टि रहित चन्द्र लग्न या सप्तम में हो और अष्टकवर्ग के विचार से ४ बिन्दु से युत हो तो केमद्रुम होता है।

२—नीचस्थग्रह से दृष्ट पापग्रह के नवांशस्थ चन्द्र रवि के साथ हो।

३—पापदृष्ट या युत क्षीण चन्द्र अष्टम में हो तथा रात्रि का जन्म हो।

४—पापग्रह पीड़ित पापदृष्ठ चन्द्र हो।

५—लग्न या चन्द्र से १।४।७।१० स्थानों में पापग्रह हों।

६—जन्म लग्न पापयुत दृष्ट हो और निर्बल शुभ चन्द्र हो।

७—नीच या शत्रुग्रहस्थ ग्रह से दृष्ट शत्रुवर्गस्थ चन्द्र तुला में हो।

८—नीच या शत्रुघर के चन्द्र १।४।७।१०।५।९ में हो और चन्द्र से ६।८।१२ में गुरु हो।

९—पाप चर राशि के नवांशस्थ चन्द्र चर राशि में हो और शत्रु ग्रह से दृष्ट हो गुरु की दृष्टि न हो तब प्रबल केमद्रुम होता है।

१०-नीच, शत्रु एवं पाप ग्रह के वर्ग में शनि शुक्र होकर एक राशि में हो या परस्पर दृष्ट हो।

११—पाप ग्रह की राशि एवं नवांश में निर्बल चन्द्र पाप ग्रह के साथ हो और उसे दशमेश देखता हो तथा रात्रि का जन्म हो।

१२-नीच राशि के नवांशस्थ चन्द्र पाप युत हो और उसे नवमेश देखता हो।

१३-रात्रि का जन्म हो और क्षीणचन्द्र नीचस्थ हो।

नोट—ये योग धनहीन कारक हैं। इनका परिहार पहले कहा गया है। अतः अतः तदनुसार फलादेश करना चाहिये।

अनफादियोग कारक ग्रहाणां फलानि—

भौमः शूरश्चण्डो महाधनो ज्ञानवान् बुधो निपुणः।
ऋद्धः शुक्रः सुखितो गुरुर्गुणाढ्यो नृपतिपूज्यः॥ ४॥

बह्वारम्भः सौरिर्बहुभृत्यः पूजितो गुणैर्विद्धः।
एषां गुणैः समगुणा ज्ञेया योगोद्भवाः पुरुषाः॥ ५॥

सं०—पूर्वोक्त अनफादियोगे यदि भौमः=मङ्गलः, योगकारकः स्यात्तदा जातकः शूरः वीरः, चण्डः=तीक्ष्णः, च भवति। बुधश्चेत्तदा महाधनः, ज्ञानवान्, निपुणश्च भवति। शुक्रश्चेत्तदा ऋद्धः=समृद्धिवान्, सुखिनश्च भवति। गुरुश्चेत्तदा गुणाढ्यः=गुणसम्पन्नः, नृपतिपूज्यश्च। सौरिः=शनिः, चेत्तदा वह्वारम्भः, बहुकार्यारम्भी, बहुभृत्यः, पूजितः=सम्मानितः, गुणैर्विद्धः=अनेकगुणोपेतः, च भवति। एषां ग्रहाणां, गुणैः समगुणाः=तुल्यगुणाः, योगोद्भवाः=अनफादियोगोत्पन्नाः, पुरुषाः=नराः, ज्ञेया=ज्ञातव्या॥ ४-५॥

हि०—पूर्व कथित अनफादि योग कारक यदि मङ्गल हो तो जातक शूर और तेज होता है। बुध होने से धनी, ज्ञानी और चतुर हो। शुक्र होने में धनी और सुखी हो। गुरु हो तो गुणवान् और नृपपूज्य हो। शनि हो तो अनेक कार्यारम्भ करनेवाला, अनेक सेवक से युक्त, सम्मानित और अनेक गुणों से युक्त हो। इन ग्रहों के गुण के तुल्य उक्त योगोत्पन्न जातक में गुण समझना चाहिये ॥ ४-५ ॥

नोट—मानसागरी आदि में मंगल का फल चौर कहा गया है अतः भट्टोत्पली टीका में 'भौमश्चौरश्चण्डो' यह लिखना सङ्गत है।

विशेष— अनफा योगकारक ग्रह फल—

कु० फ०—चौरः स्वामी दक्षः स्ववशी मानी रणोत्कटः सेर्ष्यः।
क्रोधात्संपत्साध्यः सुतनुः कुजोऽनफायां प्रगल्भश्च ॥

बु० फ०—गन्धर्वो लेख्यपटुः कविः प्रवक्ता नृपाप्तसत्कारः।
रुचिरः सुभगोऽनफायां प्रसिद्धकर्मा विबुधश्च भवेत् ॥

गु० फ०—गम्भीरः सन्मेधा चानुयुतो बुद्धिमान् नृपाप्तयशाः।
अनफायां त्रिदशगुरौ संजातः सत्कविर्भवति ॥

शु० फ०—युवतीनामतिसुभगः प्रणयः क्षितिपस्य गोपतिः कान्तः।
कनकसमृद्धश्च पुमान् अनफायां भार्गवे भवति ॥

श० फ०—विस्तीर्णभुजः सुभगो गृहीतवाक्यश्चतुष्पदसमृद्धः।
दुर्वनितागणभोक्ता गुणसहितः पुत्रवान् रविजे ॥

सुनफायोग कारक फल—

मं० फ०—विक्रमवित्तप्रायो निष्ठुरवचनश्च नायकस्तीक्ष्णः।
हिंस्रो नित्यविरोधी सुनफायां भौमसंयोगे ॥

बु० फ०—श्रुतिशास्त्रगेयकुशलो धर्मरतः काव्यकृन्मनस्वी च।
सर्वहितो रुचिरतनुः सुनफायां सोमजे भवति ॥

गु० फ०—नानाविद्याचार्यः ख्यातिं नृपतिं वृषप्रियं चापि।
सकुटुम्बधनसमृद्धं सुनफायां सुरगुरुः कुरुते ॥

शु० फ०—स्त्रीक्षेत्रगृहपश्चतुष्पदाढ्यः सुविक्रमो भवति।
नृपसत्कृतः सुवेषो दक्षः शुक्रेण सुनफायाम् ॥

श० फ०—निपुणमतिर्ग्रामपुरैर्नित्यं संपूजितो धनसमृद्धः।
सुनफायां रवितनये क्रियासुगुप्तो भवेन्मलिनः ॥

दुरुधरायोगकारक फल—

मं० बु० फ०—अनृतको बहुवित्तो निपुणोऽतिशठो गुणाधिको लुब्धः।
वृद्धस्त्रीप्रसक्तः कुलाग्रणीः शशिनि भौमबुधमध्ये ॥

मं० गु० फ०—ख्यातः कर्मसु कितवो बहुधनवैरस्त्वमर्षणो धृष्टः ।
आरक्षकः कुजगुर्वोर्मध्यगते शशिनि संग्राही ॥
मं० शु० फ०—उत्तमरामामुभगो विषादशीलोऽस्त्रविद्धवेच्छूरः ।
व्यायामी रणशीलः सितारयोर्मध्यगे चन्द्रे ॥
मं० श० फ०—उत्तमसुरतो बहुसंचयकारको व्यसनसक्तः ।
क्रोधी पिशुनो रिपुमान् यमारयोः स्याद्दुरुधरायाम् ॥
बु० गु० फ०—धर्मरतः शास्त्रज्ञो वाक्पटुः सर्ववर्द्धनः समृद्धः ।
त्यागयुतो विख्यातो गुरुबुधमध्यस्थिते चन्द्रे ॥
बु० शु० फ०—प्रियवाक् सुभगः कान्तः प्रवृत्तगो यदि सुकृतवान् नृपतिः ।
सौख्यः शूरो मंत्री बुधसितयोर्मध्यगे हिमकिरणे ॥
बु० श० फ०—देशे देशे गच्छति वित्तवशो नास्ति विद्यया सहितः ।
चन्द्रेऽन्येषां पूज्यः स्वजनविरोधी ज्ञमन्दयोर्मध्ये ॥
बृ० शु० फ०—धृतिमेधः स्थैर्ययुतो नीतिज्ञः कनकरत्नपरिपूर्णः ।
ख्यातो नृपकृत्यकरो गुरुसितयोर्दुरुधरायोगे ॥
बृ० श० फ०—सुखनयविज्ञानप्रदः प्रियवाक् विद्वान् धुरंधरो मर्त्यः ।
ससुतो धनी सुरूपश्चन्द्रो गुरुशनिमध्यो भवेज्जातः ॥
शु० श० फ०—वृद्धवनितः कुलाढ्यो निपुणः स्त्रीवल्लभो धनसमृद्धः ।
नृपसत्कृतं बहुज्ञं कुरुते चन्द्रः शनिसितयोः ॥

वेशियोगः—

सूर्याद्द्वितीयमृक्षं वेशिस्थानं प्रकीर्तितं यवनैः ।
तच्चेष्टग्रहयुक्तं जन्मनि चेष्टासु च विलग्नम् ॥ ६ ॥

सं०—स्पष्टम् । चेष्टासु=यात्रासु ।

हि०—जातक की जन्मकुण्डली में रवि से द्वितीय राशि वेशिस्थान है, यह यवनाचार्यों ने कहा है । उसमें शुभ ग्रह होने से शुभफल अन्यथा अशुभफल होता है । यात्रा के समय में भी तात्कालिक कुण्डली के अनुसार वेशियोग का विचार करना चाहिए । शुभग्रह के सम्बन्ध से शुभदा यात्रा होती है ॥ ६ ॥

विशेष—मानसागरी में वोशि और वेशियोग रवि के द्वादश और द्वितीय स्थानक्रम से कहा गया है । अर्थात् रवि से १२ में ग्रह हो तो वेशि, २ में हो तो वेशि और दोनों में होने से उभयचरी योग होता है । यहाँ चन्द्रवर्जित कुजादिग्रहों की स्थिति से योग जानना चाहिए ।

वेशियोगफलम्--

रवि से द्वितीय में गुरु हो तो जातक बुद्धिमान् सात्त्विक, सत्यवक्ता, शूर और तार्किक होता है। शुक्र हो तो कलाविद्, रसज्ञ, चतुर, नीतिज्ञ, गुणवान्, चिकित्सिक, एवं पराक्रमी होता है। बुध हो तो मधुरभाषी, कोमल, विद्वान्, सुन्दर, नायक, और सङ्गीतप्रिय होता है। मंगल हो तो हिंसक, शूर, कलहप्रेमी, द्वेषी, बली और विजयी होता है। शनि हो तो धूर्त, अपना कार्यसाधक, व्यापारदक्ष, गुरुद्वेषी, और उदर-रोगी होता है।

वेशियोगफलम्—

रवि से १२ में गुरु हो तो जातक संचयी, सद्व्ययी, विचारक, कार्यदक्ष और विनम्र होता है। शुक्र हो तो कायर, व्ययी, कामी, मेधावी, परवशी और लज्जालु होता है।

बुध हो तो विनीत, कुसङ्गति से व्ययकारक, मृदु, कलाप्रिय, तर्क करने वाला, अभावी और बुद्धिमान् होता है।

मंगल हो तो पराक्रमी, परोपकारी, नेता, मातृसुखरहित, जनप्रिय और तमोगुणी होता है। शनि से कृपण, वातरोगी, आजीविक, कार्यदक्ष और निन्दक होता है।

उभयचरीयोगफलम्—

सूर्य से २।१२ में ग्रह हो तो जातक सुन्दर, समशरीर, निपुण, बली, विद्वान्, धनी, अनेक बन्धुबान्धवभृत्य आदि से युत, उत्साही, भोगी, भाग्यशाली, राजतुल्य, उत्तम-जीविका एवं प्रतिष्ठा से युक्त होता है।

द्विग्रहयोगफलम्—

यन्त्रज्ञं पापरतं निपुणं क्रूरं च शस्त्रवृत्तिं च।
धातुज्ञं च क्रमशश्चन्द्रादिभिरन्वितः सूर्यः ॥ ७ ॥

सं०—स्पष्टम्।

हि०—रवि चन्द्र के योग जातक विविधयन्त्रों का विशेषज्ञ इंजनिअर आदि हो। मंगल रवि के योग में पापकर्म करनेवाला, बुध रवि के योग में निपुण, गुरु रवि के योग में उग्रस्वभाववाला, शुक्र रवि के योग में शस्त्रवृत्ति अर्थात् अस्त्रशस्त्रादि से जीविका चलाने वाला, और शनि रवि के योग में धातुज्ञ अर्थात्, सोना, चाँदी, हीरा आदि धातुओं के व्यापार आदि कार्य में निपुण हो ॥ ७ ॥

योगान्तरम्—

चन्द्रोऽङ्गारकपूर्वैः कूटज्ञं प्रश्रितं कुलाभ्यधिकम्।
वस्त्रव्यवहारज्ञं क्रमेण पौनर्भवं चापि ॥ ८ ॥

सं०—स्पष्टम्। कूटज्ञः=मायाविद्, पौनर्भवः=विधवा प्रभवः। प्रश्रुतं=वाक्यनिपुणं।

हि०—चन्द्र मंगल के योग में जातक मायावी, चन्द्रबुध के योग में सुवक्ता, चन्द्र गुरु के योग में कुलश्रेष्ठ, चन्द्र शुक्र के योग में वस्त्र व्यवहार कुशल, और चन्द्र शनि के योग में विधवापुत्र होता है ॥ ८ ॥

अन्ययोगौ—

मल्लो रक्षोऽन्यस्त्रीसक्तो दुःखान्वितः कुजो ज्ञाद्यैः ।
ज्ञो जीवाद्यैर्गीतज्ञं वाग्मिनं महेन्द्रजालज्ञम् ॥ ९ ॥

सं०—स्पष्टम्।

हि०—मंगल बुध के योग में जातक मल्ल अर्थात् युद्धविद्या में प्रवीण, मंगल-गुरु के योग में दूसरों का रक्षक, मंगल शुक्र के योग में परदारासक्त, मंगल शनि के योग में दुःखी होता है। बुध गुरु के साथ हो तो सङ्गीतविद्याप्रिय, शुक्र के साथ हो तो सुवक्ता और शनि से युत हो तो इन्द्रजालज्ञ होता है ॥ ९ ॥

अन्यः—

जीवः सितेन बहुगुणमसितेन समन्वितोऽत्र घटकारम् ।
स्त्रीस्वं मन्देन सितस्त्रिभिरप्येवं फलानि वदेत् ॥१०॥

सं०—जीवः=गुरुः, सितेन=शुक्रेण, युतस्तदा जातं वहुगुणं=अनेकगुणयुक्तं, करोति। अत्र=इह, असितेन=शनिना, समन्वितः=युक्तस्तदा, घटकारम्=कुम्भकारं, करोति। सितः=शुक्रः, मन्देन=शनिना, युक्तस्तदा स्त्रीस्वं=स्त्रीधनं, करोति। एवं=अमुना प्रकारेण त्रिभिरपि=त्रिग्रहयोगवशेनापि, फलानि वदेदिति ॥ १० ॥

हि०—गुरु यदि शुक्र के साथ हो तो जातक अनेक गुणों से युक्त होता है और शनि के साथ हो तो कुम्भकार अर्थात् बरतन बनानेवाला व्यापारी हो। शुक्र के साथ शनि हो तो जातक को स्त्रीधन प्राप्त होता है। इसी तरह तीन ग्रहों के योग से भी शुभाशुभफलादेश करना चाहिए ॥ १० ॥

विशेष—त्रिग्रह आदि के योगफल मानसागरी आदि में लिखा है। यहाँ जो द्विग्रहयोगफल कहा गया है उसके आधार पर भी त्रिग्रह आदि के योगफल भी ज्ञात होंगे। जैसे मान लिया कि किसी की जन्म कुण्डली में चन्द्र, मंगल और गुरु एक राशि में है तो चन्द्र-मंगल योग एवं चन्द्र-गुरु तथा गुरु-मंगल का योग फल जो हो, वह त्रिग्रह-

योग फल होगा। इसी तरह चार आदि ग्रहों का योगफल जानना चाहिए। सूक्ष्म विचार के लिए केन्द्रेश त्रिकोणेश आदि के योग में उत्तम फल और ३।६।११।८।१२ इन स्थानों के अधिपति ग्रहों के योग में अशुभफल ज्ञातव्य है। लग्नेश और तृतीयेश के योग में पराक्रमवृद्धि, लग्नेश धनेश या लाभेश के योग में धनलाभ, लग्नेश षष्ठेश का योग रिपु और रोगकारक, व्ययेश का योग व्ययकारक, और अष्टमेश का योग निधनकारक होता है, इसी तरह लग्नेश और अन्यभावेश का सम्बन्ध विचार कर शुभाशुभ फलादेश करना चाहिए।

प्रव्रज्यायोगः—

चतुरादिभिरेकस्थैः प्रव्रज्यां स्वां ग्रहः करोति बली।
बहुवीर्यैस्तावत्यः प्रथमा वीर्याधिकस्यैव ॥ ११ ॥

सं०—एकस्थैः=एकराशिगतैः, चतुरादिभिर्ग्रहैः, प्रव्रज्यायोगो भवति। तेषां ग्रहाणां मध्ये बली ग्रहः यः स स्वां प्रव्रज्यां करोति। बहुवीर्यैः=अनेकैर्बलिभिर्ग्रहैः, तावत्यः=बलीग्रहसंख्यकाः, प्रव्रज्याः भवन्ति। तासु प्रव्रज्यासु, वीर्याधिकस्य=बलाधिकस्य ग्रहस्य, एव, प्रथमा=आद्या, प्रव्रज्या भवति। ततोबलक्रमेण प्रव्रज्या वेदितव्या। बलीग्रहाभावे प्रव्रज्या योगाभावो ज्ञेयः ॥११॥

हि०—जिसकी जन्मकुण्डली में एक जगह चार आदि ग्रह हों तो उसे प्रव्रज्या (सन्यास) योग होता है। उन ग्रहों में जो सर्वाधिक बलवान् ग्रह हो, वह अपनी वक्ष्यमाण प्रव्रज्या का कारक होता है। एक राशिस्थित ग्रहों में जितने ग्रह बली हों, उतनी प्रव्रज्याएँ होती हैं। उनमें सर्वाधिक बली ग्रह की प्रव्रज्या पहले होती है, उसके बाद बल के अनुसार क्रम से ग्रहों की प्रव्रज्या होती है। योग में बलवान् ग्रह न होने पर प्रव्रज्या योग नहीं होता ॥११॥

ग्रहाणां प्रव्रज्याज्ञानम्—

तापसवृद्धश्रावकरक्तपटाजीविभिक्षुचरकाणाम्।
निर्ग्रन्थानां चार्कात् पराजितैः प्रच्युतिर्बलिभिः ॥ १२ ॥

सं०—अर्कात्=सूर्यादारभ्य, क्रमेण तापसवृद्धश्रावकादयः प्रव्रज्या भवन्ति। अर्थात् सूर्ये, तापसः=वानप्रस्थः; चन्द्रे, वृद्धश्रावकः=कापालिकः, कुजे, रक्तपटः=शाक्यः (सन्यासी), बुधे, आजीवि=एकदण्डी, गुरौ, भिक्षुः=त्रिदण्डी (यतिः), शुक्रे, चरकः=चक्रधरः, शनौ, निर्ग्रन्थः=नागः क्षपणकः, च जातको भवति। बलिभिः=बलयुक्तैर्ग्रहैः, पराजितैः=विजितैः, प्रच्युतिः=प्रव्रज्याहीना, ज्ञेया ॥१२॥

हि०—प्रव्रज्या योग में सूर्य बली होने से जातक वानप्रस्थ, चन्द्र से कापालिक, मंगल से सन्यासी, बुध से एकदण्डी (भिक्षु बौद्ध), गुरु से भिक्षु (त्रिदण्डी), शुक्र से चरक याने चक्रधर और शनि से नग्न (नागा या जैन) होता है। बली ग्रहों से पराजित ग्रह की प्रव्रज्या नहीं होती। एकराशिस्थ दो ग्रहों के अंशादि तुल्य होने पर युद्ध होता है, उसमें उत्तर दिशा में रहने वाला ग्रह विजयी और दक्षिणस्थ ग्रह पराजित होता है। दिशा का ज्ञान शर से होता है ॥१२॥

प्रव्रज्यायोगे विशेषः—

दिनकरलुप्तमयूखैरदीक्षिता भक्तिवादिनस्तेषाम् ।
याचितदीक्षा बलिभिः पराजितैरन्यदृष्टैर्वा ॥ १३ ॥

सं०—दिनकरलुप्तमयूखैः=अस्तंगतैर्ग्रहैः, अदीक्षिताः=दीक्षा-रहिताः, भवन्ति, किन्तु तेषां=प्रव्रजितानां, भक्तिवादिनः=भक्ताः भवन्ति। बलिभिः =बलयुक्तैः, पराजितैः=विजितैः, वा अन्यदृष्टैः=भिन्नग्रहावलोकितैः, याचितदीक्षाः=दीक्षाप्रार्थनापराः, भवन्ति ॥१३॥

हि०—प्रव्रज्याकारक ग्रह यदि सूर्य के साथ अस्त हो तो जातक अदीक्षित रहता है, परन्तु परिव्राजक का भक्त होता है। यदि योगकारक ग्रह बली ग्रह से पराजित हो अथवा दूसरे ग्रहों से दृष्ट हो, तब जातक दीक्षा का याचक होता है—अर्थात् दीक्षित नहीं होता ॥१३॥

वि०—१२।१७।१३।११।९।१५ ये अंश क्रम से चन्द्रादि ग्रहों के कलांश हैं। रवि से अपने अपने कलांश के भीतर ग्रह रहने से अस्त होते हैं। जैसे रवि से १ अंश के भीतर चन्द्र होने से अस्त होता है। इसी तरह अन्य ग्रहों का जाने।

अन्य प्रव्रज्यायोग—

१. ग्रहदृष्टिरहित जन्मराशीश यदि शनि को देखें तो प्रव्रज्या हो।
२. निर्बल जन्मराशीश को शनि देखता हो।
३. चन्द्रमा मंगल के द्रेष्काण में या शनि-मंगल के नवांश में हो।
४. शनि के द्रेष्काण में चन्द्र हो या शनि-मंगल के नवांश में गया चन्द्र केवल शनि से दृष्ट हो तो जातक सन्यासी हो।
५. लग्नेश और शनि निर्बल हो तो सन्यासी हो।
६. यदि शनि से दृष्ट चन्द्र, गुरु और लग्न हो तथा जन्मलग्न से नवम में गुरु हो तो जातक आचार्य पदधारी तपस्वी होता है।
७. पारिजातांश में गुरु, सिंहासनांश में चन्द्र और ऐरावतांश में शुक्र हो।

८. कारकांशलग्न से द्वादश में केतु हो ।
९. कारकांशलग्न से १२ में मेष या धनु राशि के शुभ ग्रह हों ।
१०. चार ग्रहों का योग जिस राशि में हो उसका स्वामी केन्द्र या त्रिकोण में हो ।
११. जन्मलग्न से दशम मीन राशि का बुध या मंगल हो ।
१२. निद्रावस्था के अष्टमेश चतुर्थ में हो या शुभयुत दृष्ट हो ।
१३. लग्न, अष्टम और धर्मभाव अपने अपने स्वामी से दृष्ट हो ।
१४. लग्न से नवम में दो तीन शुभ ग्रह हों ।

इति प्रव्रज्यायोगविचारः ।

अथ राशिशीलनिरूपणम्

चरादि संज्ञक राशीनां फलानि—

अस्थिरविभूतिमित्रं चलनमटनं स्खलितनियममपि चरभे ।
स्थिरभे तद्विपरीतं क्षमान्वितं दीर्घसूत्रं च ॥ १ ॥
द्विशरीरे त्यागयुतं कृतज्ञमुत्साहितं विविधचेष्टम् ॥ ½ ॥
ग्राम्यारण्यजलोद्भवराशिषु विद्याच्च तच्छीलान् ॥ २ ॥

सं०—चरभे = चरसंज्ञकराशौ, अस्थिरविभूतिमित्रं = अनियतैश्वर्य-सुहृदुपेतं, चलनं=चञ्चलं, अटनं=भ्रमणशीलं, स्खलितनियमम् = च्युतव्रतं, अपि=निश्चयेन, जातको भवति । स्थिरभे=स्थिरराशौ तद्विपरीतं=चरराश्युक्तं विपरीतं, क्षमान्वितं=क्षमायुक्तं, दीर्घसूत्रं=दीर्घकालेन कार्यसम्पादकः, च भवति । द्विशरीरे=द्विस्वभावराशौ, त्यागयुतं=दातारं, कृतज्ञं=उपकारमन्तारं, उत्साहितं=उत्थानशीलं, विविधचेष्टम्=बहुविधकार्यकरणशीलं, भवति । ग्राम्यारण्यजलोद्भवराशिषु = द्विपदवनचरजलचरसंज्ञकभेषु, तच्छीलान् = तत्तद्राशिप्रयुक्तस्वभावान्, च, विद्यात्=जानीयात् ॥ १-२ ॥

हि०—चर संज्ञक (१।४।७।१०) राशि में जन्म लेनेवाला जातक अस्थिर सम्पत्तिवाला, चञ्चल मित्र एवं स्वभाववाला, व्यर्थ भ्रमणशील और अनियतव्रतवाला होता है । स्थिर संज्ञक (२।५।८।११) राशि में स्थिर सम्पत्ति, स्थिर मित्र, स्थिर स्वभाव, अभ्रमणशील, दयालु और दीर्घसूत्री होता है। द्विस्वभाव संज्ञक (३।६।९।१२) राशि में दाता, कृतज्ञ, उत्साही और अनेक कार्य करने वाला जातक होता है । द्विपद संज्ञक ग्राम्य (मिथुन, कन्या, तुला, कुम्भ, धनु का पूर्वार्द्ध) राशि में उत्पन्न जातक ग्राम्यप्रिय, अरण्य-वनचर (मेष, वृष, सिंह, धनु परार्द्ध, मकर पूर्वार्द्ध) राशि में उत्पन्न जातक अरण्यप्रिय और जलचर (कर्क मीन, मकर का उत्तरार्द्ध) राशि का जातक जलप्रिय होता है । वृश्चिक राशि का जातक ग्राम्य और अरण्य दोनों का प्रिय होता है ॥ १-२ ॥

विशेष—मेषादि राशिस्थ चन्द्र का फल निम्नलिखित है—

मेष राशिस्थ चन्द्रफलम्—

धनैर्वान् पुत्रवान् उग्रः परोपकरणे रतः ।
सर्वकर्मसमायुक्तः सुशीलो राजवल्लभः ॥

गुणाभिरामः सततं देवब्राह्मणपूजकः ।
कोष्ण शाकाल्पभोक्ता च ताम्रविस्तृत लोचनः ॥
शूरः शीघ्रप्रमादी च कामी दुर्बलजानुकः ।
शिरोव्रणयुतो दाता कुनखी सेवकप्रियः ॥
द्विभार्यः सङ्गरे भीरुश्चपलो नितरां भवेत् ।
प्रथमे सप्तमे वर्षे त्रयोदशमिते ज्वरः ॥
षोडशे वा सप्तदशे वर्षे स्यात्तु विसूचिका ।
तृतीये द्वादशे वापि जलाद्भीतिः प्रजायते ॥
पञ्चविंशन्मिते वर्षे सन्तानं च निशान्धता ।
द्वात्रिंशत्प्रमिते वर्षे शस्त्रघातः प्रजायते ॥
कार्यारम्भ प्रलापी च विदेशगमने रतः ।
कृशांगः शीघ्रगो मानी शुभलक्षणसंयुतः ॥
वाताधिकयः शुभैर्दृष्टे चन्द्रेनवति सम्मिते ।
आयुस्तस्य विनिर्देश्यं कार्तिकस्य सितेतरे ॥
पक्षेबुधे नवम्यां च निशीथे च शिरोरुजा ।
निधनं जायते नूनं जन्मनीन्दावजस्थिते ॥

'वृष राशि फलम्—

अल्पतेजः नरः स्तब्धः कर्मबुद्धिविवर्जितः ।
सत्यवागर्थवान्कामी कामिनीवचनानुगः ॥
चिरायुरल्पकेशश्च परोपकरणेरतः ।
पितुर्मातुर्गुरूणां च भक्तो भूपतिवल्लभः ॥
सभायां चतुरो नित्यं सन्तुष्टो येनकेनचित् ।
पीडास्यात्प्रथमे वर्षे तृतीयेऽग्निभयं दिशेत् ॥
विसूचिकाभयं विद्यात्सप्तमे नवमे व्यथा ।
दशमे रुधिरोद्गारो द्वादशे पतनं तरोः ॥
सर्पाच्च षोडशे भीतिः पीडा चैकोनविंशके ।
पञ्चविंशन्मिते तोयाद्भयं भवति निश्चितम् ॥
त्रिंशन्मिते तथा पीडा द्वात्रिंशत्प्रमितेऽपि च ।
श्लेष्मलः शान्तिमाञ्छूरः सहिष्णुर्बुद्धिमान्नरः ॥
सौम्यग्रहेक्षिते चन्द्रे षण्णवत्यब्दसंख्यया ।
आयुर्जन्तोर्विनिर्देश्यमवश्यं बचनात्सताम् ॥
माघमासे नवम्यां च शुक्ले पक्षे भृगोर्दिने ।
रोहिण्यां निधनं विद्याज्जन्मनीन्दौ वृषस्थिते ॥

मिथुन राशिफलम्—

ग्रामण्यां चतुरः प्राज्ञो दृढसौहृदकारकः।
मिष्टान्नाशी सुशीलश्च छिन्नवाक् चललोचनः॥
कुटुम्बवत्सलः कामी कुतूहलरतिप्रियः।
वयसः पूर्वभागेतु सुखी मध्येतु मध्यमः॥
चरमेऽतितरां दुखी द्विभार्यो गुरुवत्सलः।
स्वल्पापत्यो गुणैर्युक्तो नरो भवति निश्चितम्॥
वृक्षाद्भीः प्रथमे वर्षे षोडशेऽरिकृतं भयम्।
अष्टादशप्रमाणे तु कर्णरुक् परिपीडनम्॥
विंशत्यो प्रमिते वर्षे पीडात्यन्तं प्रजायते।
अष्टत्रिंशन्मिते नूनं पीडा स्यान्मृत्युना समा॥
भोगी दानरतो नित्यं सत्यधर्मपरायणः।
सुभगो विषयासक्तो गीतनृत्यप्रियः सुधीः॥
शास्त्रज्ञः शुभवाक् जीवेदशीतिः शरदां नरः
वैशाखे शुक्ल पक्षे च द्वादश्यां बुधवासरे॥
मध्याह्ने हस्तनक्षत्रे निर्वाणं खलु निर्दिशेत्।
इत्युक्तं मिथुनस्थे तु जन्मकाले कलानिधौ॥

कर्कराशिफलम्—

परोपकृतिकर्ता च सर्वसंग्रहतत्परः।
पुत्रवान् गुणवान् साधुर्भक्तः पित्रोः स्त्रिया जितः॥
अल्पायुः प्रथमे भागे निःस्वोमध्ये सुखी भवेत्।
तृतीये धर्मसंसक्तस्तीर्थयात्रापरायणः।
रेखा तस्य भवेन्नूनं ललाटमध्यगामिनी॥
वामाङ्गेऽग्निभयं विद्याच्छीर्षरुक् परिपीडितः॥
बान्धवैर्बहुभिर्युक्तो बहुभार्यः प्रजायते।
भग्रहस्थितिवेत्ता च बहुमित्रः प्रियंवदः॥
रोगी स्यात्प्रथमे वर्षे तृतीये लिंगपीडनम्।
एकत्रिंशन्मिते वर्षे सर्पतो भयमाविशेत्॥
द्वात्रिंशत्प्रमिते वर्षे बहुपीडोद्भवो भवेत्।
पंचाशीतिमितं ब्रूयादायुः षण्णवतिः ध्रुवा॥
माघे मासि सितेपक्षे नवम्यां भृगुवासरे।
रोहिणी नाम नक्षत्रे म्रजेदायुः प्रपूर्णताम्॥

प्रसूतो कर्कराशिस्थे कुमुदानन्दने सति ।
पुराणैर्मुनिभिः प्रोक्तं निर्याणमिति निश्चितम् ॥

सिंहराशिफलम्—

धनधान्यसमायुक्तः श्रीमांश्च समरप्रियः ।
विद्वान्सर्वकलाभिज्ञो विदेशगमनेरतः ॥
विशालः पिङ्गलाक्षश्च क्रोधी स्वल्पात्मजोनरः ।
सर्वगः शत्रुहन्ता च शिरोरुक् निष्ठुरो महान् ॥
भूताद्बाधादिमेवर्षे पंचमेऽब्देऽग्नितो भयम् ।
सप्तमे ज्वरबाधा च नृणां भवति निश्चितम् ॥
विसूचिकोद्भवा पीडा नृणां भवति निश्चितम् ।
विंशन्मितं भयं सर्पादिकविंशे प्रपीडनम् ॥
उदरे सव्य भागे तु वातगुल्मादिसंभवः ।
सुशीलः कृपणोत्यन्तं सत्यवादी विचक्षणः ॥
शुभग्रहोक्षिते चन्द्रे शतायुर्जायते नरः ।
फाल्गुनस्यासिते पक्षे पंचम्यां भौमवासरे ॥
मध्याह्ने जलमध्ये च मृत्युर्नूनं न संशयः ।
सिंहराशिस्थिते चन्द्रे निर्याणमिदमीरीतम् ॥

कन्याराशिफलम्—

स्वजनानन्दकृन्नित्यं धनवान्बहुसेवकः ।
प्रवासी च कलाभिज्ञो गुरुभक्तः प्रियंवदः ॥
देवताद्विजवर्याणां भक्तस्तत्परमानसः ।
धर्मकर्मसमायुक्तो जनानामतिदुर्लभः ॥
कन्यकाल्पत्वमापन्नो भूरिपुत्रो भवेन्नरः ।
शिश्नेकण्ठप्रदेशे च लाञ्छनं निश्चितं भवेत् ॥
वह्निपीडा तृतीयेऽब्दे पंचमे लोचनव्यथा ।
नवमेद्वारबाधा च त्रयोदशमितेऽपि च ॥
तथा पंचदशे वर्षे सर्पतो भयमादिशेत् ।
एकविंशन्मिते वर्षे पतनं वृक्षभित्तितः ॥
अरण्ये शस्त्रघातः स्याद्वर्षे त्रिशन्मिते ध्रुवम् ।
अशीत्यब्दं भवेदायुश्चन्द्रे सौम्यग्रहेक्षिते ॥
चैत्रकृष्णात्रयोदश्यां निधनं रविवासरे ।
शीतांशुतो स्थिते सूतौ कन्यायामिति संस्मृतम् ॥

तुलाराशिफलम्—

मान्यः सर्वजनैर्नूनं वस्तुसंग्रहतत्परः ।
भोगी धर्मपरः श्रीमान्बहुभृत्यो विचक्षणः ॥
वापीकूपतड़ागादि निर्मितौ सादरः सदा ।
प्राज्ञः सर्वकलाभिज्ञो नृपाणामतिवल्लभः ॥
मधुरान्नरसप्रीतिर्द्विभार्यः पितृभक्तिकृत् ।
स्वल्पापत्योऽल्पबन्धुश्च कृषिकर्मविचक्षणः ॥
क्रयविक्रयसम्प्राप्तिर्देवब्राह्मणपूजकः ।
भार्यावचनोऽनुगामी च सप्तमेऽब्देऽग्निजं भयम् ॥
अष्टमे ज्वरजापीड़ा द्वादशे च जलाद्भयम् ।
तरोस्तुरगतः पातः सर्पभीर्वापि विंशके ॥
एकविंशन्मिते पीड़ा चन्द्रे सौम्यग्रहेक्षिते ।
पञ्चाशीतिर्मवेदायुर्वैशाखस्या दलपक्षके ॥
सार्पेऽष्टम्यां भृगोर्वारे निधनं पूर्वयामके ।
तुलाराशिस्थिते चन्द्रे निर्याणमिति सूचितम् ॥

वृश्चिकराशिफलम्—

परतापपरः क्रोधी विद्वेषी कलहप्रियः ।
विश्वासघातकश्चापि मित्रद्रोही विचक्षणः ॥
असन्तुष्टो नृपैः पूज्यो विघ्नकर्तान्यकर्मणि ।
शुभलक्षणसंयुक्तो गुप्तपापश्च विक्रमी ॥
बहुभृत्यश्चतुर्बन्धुर्द्विभार्यो जायते पुमान् ।
प्रथमेऽब्दे ज्वरात्पीड़ा तृतीये भयमग्नितः ॥
पंचमेऽब्दे ज्वरात्पीड़ा तथा पंचदशेऽपि च ।
पंचविंशन्मिते वर्षे पीड़ा स्यान्महती ध्रुवम् ॥
चन्द्रे सौम्यग्रहैर्दृष्टे नवत्यब्दान्स जीवति ।
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां बुधवासरे ॥
हस्तनक्षत्रसंयुक्ते मध्यरात्रे गते सति ।
चन्द्रे वृश्चिकराशिस्थे निर्याणमिति कीर्तितम् ॥

धनुराशि फलम्—

प्राज्ञो धर्मी सुपुत्रश्च राजमान्यो जनप्रियः ।
द्विजदेवार्चने प्रीतिर्वस्तुसंग्रहतत्परः ॥

समायां च भवेद्वक्ता सुनखी सुमतिः शुचिः ।
स्थूलदन्ताधरग्रीवः काव्यकर्ता प्रगल्भकः ॥
कुलशाली वदान्यश्च सभाग्यो दृढसौहृदः ।
निम्नपादतलः क्लेशी साहसी विनयान्वितः ॥
शान्तः क्षिप्रप्रकोपी च तापसः स्वल्पभुक् नरः ।
स्वल्पापत्यः सुबन्धुश्च पूर्ववयसि-वित्तमान् ॥
सबाधः प्रथमे वर्षे महापीड़ा त्रयोदशे ।
अष्टषष्टिमितं प्राहुरायुर्वा पंचसप्ततिः ॥
चन्द्रे सर्वशुभैर्दृष्टे शतवर्षाणि जीवति ।
आषाढ़स्यासिते पक्षे पंचम्यां भृगुवासरे ॥
निशायां हस्तनक्षत्रे निधनं सर्वथा भवेत् ।
निर्याणमिति संप्रोक्तं चन्द्रे सूतौ धनुस्थिते ॥

मकरराशिफलम्—

धीरो विचक्षणः क्लेशी पुत्रवान् नृपतिप्रियः ।
कृपालुः सत्यसंपन्नो वदान्यो सुभगोऽलसः ॥
कृष्णतालुः पुमान्नूनं विस्तीर्णकटिरुद्भवेत् ।
पञ्चमे वत्सरे पीड़ा सप्तमे च जलाद्भयम् ॥
दशमे पतनं वृक्षाद् द्वादशे शस्त्रपीडनम् ।
विंशन्मिते ज्वराद्बाधा शाखासु पञ्चविंशके ॥
पञ्चत्रिंशत्समाकाले वामाङ्गेऽग्निभयं दिशेत् ।
अब्दानां नवतिर्नूनं आयुस्तस्य प्रकीर्तितम् ॥
श्रावणस्य सितेपक्षे दशम्यां भौमवासरे ।
ज्येष्ठायां निधनं नूनं चन्द्रे मकरसंस्थिते ॥

कुम्भराशिफलम्—

दाता मिष्टानभोक्ता च धर्मकार्येषु सत्वरः ।
प्रियवक्तृत्वसंयुक्तो नरः क्षीणकलेवरः ॥
स्वल्पापत्यो द्विभार्यश्च कामी द्रव्यविवर्जितः ।
वामहस्ते भवेल्लक्ष्म पीडा प्रथमवत्सरे ॥
पञ्चमेऽग्निभयं विद्यादथ द्वादशवत्सरे ।
व्यालाद्वा जलतो भीतिरष्टविंशतमे क्षतिः ॥
चौरेभ्यश्च भवेदायुर्वर्षाणां नवतिर्ध्रुवम् ।
भाद्रमास्यसिते पक्षे चतुर्थ्यां शनिवासरे ॥

भरणीनाम नक्षत्रे गृणन्ति मरणं नृणाम् ।
एवमुक्तं मुनि श्रेष्ठैश्चन्द्रे जन्मनि कुम्भगे ॥

मीनराशिफलम्—

धनीमानीविनीतश्च भोगी संहृष्टमानसः ।
पितृमातृसुराचार्यगुरुभक्तियुतो नरः ॥
उदारो रूपवान् श्रेष्ठो गन्धमाल्यविभूषणः ।
पञ्चमेऽब्दे जलाद्भीतिरष्टमे ज्वरपीडनम् ॥
द्वाविंशे महती पीड़ा चतुर्विंशन्मितेऽब्दके ।
पूर्वाद्यागमनं चायुरब्दानां नवतिः स्मृता ॥
आश्विनस्यासिते पक्षे द्वितीयायां गुरोर्दिने ।
कृत्तिकानाम नक्षत्रे सायं मृत्युर्न संशयः ॥
इतीरितं तु निर्याणं यवनाचार्यसम्मतम् ।
मीनस्थे यामिनीनाथे भवेदत्र न संशयः ॥

दृष्टि फलम्—

क्षेत्राधिपसन्दृष्टे शशिनि नृपस्तत्सुहृद्भिरपि धनवान् ।
द्रेष्काणांशकपैर्वा प्रायः सौम्यैः शुभं नाऽन्यैः ॥ ३ ॥

सं०—शशिनि=चन्द्रे, क्षेत्राधिपसंदृष्टे=स्वस्थितराशीश्वरेणावलोकिते, जातः नृपः=भूपतिः, स्यात् । सुहृद्भिः=चन्द्राक्रान्तराशीश्वरमित्रैः, अपि, सन्दृष्टे चन्द्रे जातः धनवान् भवति । वा द्रेष्काणांशकपैः=द्रेष्काणनवांश द्वादशांशत्रिंशांशाधिपैः, चन्द्रे दृष्टे जातकः धनी भवति । ऐषु योगेषु सौम्यैः= शुभग्रहैः, प्रायः शुभं फलं, अन्यैः=पापैः, न शुलं फभं ज्ञेयमिति ॥३॥

हि०—जन्मकुण्डली में चन्द्रमा जिस राशि में हो उस राशि के स्वामी से यदि देखा जाय तो जातक राजा हो और राशीश के मित्र ग्रह से दृष्ट हो तो धनी होता है । अथवा चन्द्रमा जिस द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश एवं त्रिंशांश में हो उसके स्वामी से चन्द्र दृष्ट हो तो जातक धनी हो । इन योगों में यदि राशीश्वर आदि शुभ ग्रह हों तो पूर्ण शुभ और पापग्रह हों तो पूर्ण शुभ फल नहीं होता है । मेरे विचार से राशीश्वर के अतिरिक्त शुभदृष्ट चन्द्र शुभ और पापदृष्ट चन्द्र अशुभ है ॥३॥

वि०—इस श्लोक में क्षेत्राधिप या उसके मित्र और द्रेष्काणेश आदि से चन्द्र दृष्ट होने से जातक को भूप या धनी कहा गया है । यदि अन्य अर्थात् क्षेत्रादि अधिप से भिन्न ग्रह चन्द्रमा को देखे उसके लिये शुभ ग्रह का फल शुभ और पाप ग्रह का

फल अशुभ कहा गया है। अन्य टीकाकारों ने क्षेत्राधिप या द्रेष्काणेशादि के शुभ होने पर शुभ और पाप होने से अल्प शुभ फल कहा है। यह विचारणीय है। मित्र की दृष्टि में धनी तो शत्रु ग्रह की दृष्टि में निर्धन जानना चाहिये।

भावफलम्—

पुष्णन्ति शुभा भावान्मूर्त्यादीन् घ्नन्ति संस्थिताः पापाः।
सौम्याः षष्ठेऽरिघ्नाः सर्वेऽरिष्टा व्ययाष्टमगाः ॥ ४ ॥

सं०—शुभाः=शुभग्रहाः, लग्नादिद्वादशभावेषु संस्थिताः=व्यवस्थिताः, सन्त। मूर्त्यादीन्=लग्नादीन्, भावान्, पुष्णन्ति=वृद्धिं कुर्वन्ति। पापाः=पापग्रहाः, संस्थिताश्चेत्तदा तान् भावान् घ्नन्ति=विनाशयन्ति। षष्ठे=लग्नात्षष्ठस्थाने, शुभाः=शुभग्रहाः, अरिघ्नाः=रिपुनाशकाः, भवन्ति। व्ययाष्टमगाः=द्वादशाष्टमस्थानगताः, सर्वग्रहाः, अरिष्टा=नेष्टाः, भवन्ति ॥४॥

हि०—शुभ ग्रह लग्न आदि द्वादश भावों में रहें तो भावों की वृद्धि करते हैं। पाप ग्रह रहने से भावों की हानि करते हैं। लग्न से छठाँ स्थान में शुभ ग्रह रहने से शत्रुनाशक होते हैं। लग्न से १२।८ में सभी शुभ या अशुभ ग्रह अनिष्टकारक होते हैं ॥४॥

वि०—जिस भाव में शुभ ग्रह हो उसकी वृद्धि और पाप से हानि होती है। 'यो यो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा' इसके अनुसार जिस भाव का स्वामी पाप ग्रह होकर उस भाव में हो तो वहाँ उसकी वृद्धि समझनी चाहिये। भावेश के मित्र में शुभ फल और शत्रु होने से अशुभ फल होगा। श्लोक में सामान्य रूप से शुभाशुभ ग्रहवश विचार किया गया है। लग्न से (३।६।११।१०) ये उपचय-स्थान हैं। इनमें षष्ठस्थान शत्रु का है। शुभग्रह शत्रुनाशक और पाप शत्रुवर्द्धक हैं, अतः शुभग्रह का फल शुभ कहा गया है। शेष ३।११।१० में शुभ या पाप क्रम से पराक्रम लाभ और कर्म के वर्द्धक होते हैं।

वृहज्जातक में "विपरीतं रिःफषष्ठाष्टमेषु" यह कहा गया है। इसके अनुसार ६।८।१८ में शुभग्रह शुभ और पापग्रह अशुभ सिद्ध होता है। यहाँ ८।१२ में सभी ग्रह को अशुभ कहा गया। बराह मिहिर ने अपने ग्रन्थों में अन्याचार्यों का भी मत प्रकाशित किया है उनका विचार है कि—

"ज्योतिषमागमशास्त्रंविप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकम्।
स्वयमेव विकल्पयितुं किन्तु बहूनां मतं वक्ष्ये ॥"

लघुजातक निर्माणकाल में अनेक वचन ८।१२ में स्थित सभी ग्रहों के फल अशुभद मिले, अतः वैसा प्रतिपादन किया गया।

वस्तुतः फलादेश में केवल स्थानवश फल सामान्य है। स्व, मित्र, शत्रु, उदासीन, उच्च, नीच, मूलत्रिकोण और बलाबल के विचार से सूक्ष्म फलादेश होता है। इसलिए ज्योतिषी को तदनुसार फलादेश करना उचित है। विशेष भाव-फल ग्रन्थान्तर में देखना चाहिये।

लग्नगतचन्द्रफलम्—

कर्कवृषाजोपगते चन्द्रे लग्ने धनी सुरूपश्च।
विकलाङ्गजडदरिद्राः शेषेषु विशेषतः कृष्णे ॥ ५ ॥

सं०—कर्कवृषाजोपगते=कर्क-वृष-मेष-राशि-गते, चन्द्रे=शशिनि, लग्ने=लग्नस्थे, तदा जातकः धनी=धनवान्, सुरूपः=सुन्दरः, च भवति। शेषेषु=अन्यराशिषु, स्थिते चन्द्रे लग्नगते सति जातकाः, विकलाङ्गजडदरिद्राः=क्षीणाङ्गमूर्खनिर्धनाः, भवन्ति। कृष्णे=कृष्णपक्षे, विशेषतः=विशेषरूपेण, विकलाङ्गादीनां जन्म भवतीत्यर्थः ॥५॥

हि०—जन्मकाल में यदि कर्क, वृष और मेषराशि का चन्द्र लग्न में हो तो जातक धनी और रूपवान् होता है। शेष राशि के चन्द्र लग्नस्थ होने से जातक अङ्गहीन, मूर्ख और निर्धन होता है। कृष्णपक्ष में यदि जन्म हो और ३।५।६।७।८।९।१०।११।१२ इन राशियों का चन्द्र लग्न में हो तो विशेष रूप से अङ्गविकलादि जानना चाहिये ॥५॥

सूर्यफलम्—

विकलेक्षणोऽर्कलग्ने तैमिरिकोऽजे स्वभे तु राज्यन्धः।
बुद्बुद्दृष्टिः कर्किणि काणो व्ययगे शशांके वा ॥ ६ ॥

सं०—अर्कलग्ने=लग्नस्थिते सूर्ये, जातः विकलेक्षणः=क्षीणदृष्टिकः, अजे=मेषस्थेऽर्के, लग्नगते सति तैमेरिकः=तिमिरहतदृष्टिः, स्वभे=सिंह राशिस्थे सूर्ये लग्ने सति, तु, रात्र्यन्ध्रः=निशान्धः, कर्किणि=कर्कस्थेऽर्के लग्ने सति, बुद्बुद्दृष्टिः=पुष्पिताक्षः, व्ययगे=लग्नात् द्वादशस्थे सूर्ये, काणः=अन्धः भवति। वा=अथवा शशाङ्के=चन्द्रे, व्ययगे=लग्नात् द्वादशस्थे, तदा जातकः काणो भवति ॥६॥

हि०—लग्न में सूर्य हो तो जातक क्षीणदृष्टि वाला होता है। मेष राशि का सूर्य लग्न में हो तो तैमेरिक (आँख में धुंधलापन रोग), सिंह राशिस्थ रवि लग्न में हो तो रात्र्यन्ध (रतौंधी रोग), कर्क लग्नस्थ रवि में बुद्बुददृष्टि और लग्न से

द्वादश रवि में काना होता है। अथवा चन्द्र द्वादश में होने से भी जातक कराना होता है। यहाँ सूर्य से दक्षिण नेत्र और चन्द्र से वाम नेत्र काना समझना चाहिये ॥६॥

वि०— विकलाङ्ग-योग—

१—लग्न से १।४।७।१० में पापग्रह हो तो विकलाङ्ग।
२—रवि और चन्द्र लग्न से १।४।७।१० में हो तो विकलाङ्ग।
३—लग्नस्थ शुक्र को शनि देखता हो तो विकलाङ्ग।
४—चौथे में शुक्र हो और शनि, मंगल या बुध से युत गुरु हो तो विकलाङ्ग
५—१० में चन्द्र ७ में मंगल और रवि से २ में शनि होने से विकलाङ्ग।
६—पापदृष्ट मंगल लग्न से ५.९ में हो तो विकलाङ्ग।
७—लग्न से २ में शनि, १० में चन्द्र और ७ में बुध हो तो विकलाङ्ग।
८—कुम्भ राशि में रवि और शुक्र, चन्द्र और शनि नीचस्थ हो तो विकलाङ्ग।

नेत्ररोग-योग

१—षष्ठेश वक्री ग्रह की राशि में हो।
२—लग्नेश बुध या मंगल की राशि में हो और उसे बुध मंगल देखते हों।
३—लग्नेश और अष्टमेश लग्न से षष्ठस्थ हों।
४—लग्न से ६।८ में शुक्र दक्षिण नेत्ररोग कारक।
५—धनेश पर शुभ दृष्टि और लग्नेश पाप के साथ हो।
६—लग्न से २।१२ के स्वामी शनि-मंगल से युत दृष्ट हो।
७—लग्न से २।१२ में शनि दृष्ट पाप ग्रह हों।
८—द्वितीयेश और द्वादशेश के नवांशेश पाप राशि में हों।
९—लग्न अष्टम में पाप दृष्ट शुक्र हो।
१०—शयनावस्था का मंगल लग्न में हो।
११—शुक्र के साथ द्वितीयेश हो।
१२—शुक्र से ३।८।१२ में द्वितीयेश और द्वादशेश हो।
१३—पापदृष्ट रवि लग्न से ५।९ में हो।

अन्ध योग—

१. शनि, मंगल ९।५ में हो और लग्न में ग्रहण कालिक सूर्य हो।
२. रवि और शुक्र के साथ द्वितीयेश और द्वादशेश होकर ६।८।१२ में हो।
३. लग्न से ५।८।१२ में चन्द्र, मंगल का योग तथा ६।८।१२ में गुरु के साथ चन्द्र हो।
४. चन्द्र, रवि और शुक्र लग्न से ६।८।१२ में हों।

५. बुध चन्द्र का योग ६।८।१२ में और चन्द्र सूर्य का योग १।४।७।१०।३ में हो।

६. अशुभ राशि का मंगल केन्द्र में हो और मकर या बुध का रवि लग्न से सप्तम में हो।

७. पाप दृष्ट शुभ ग्रह लग्न से ६।८।१२ में हो या शुभ-लाभ में मंगल हो।

८. द्वितीयेश और द्वादशेश के साथ शुक्र तथा लग्नेश ६।८।१२ में हों।

९. शुक्र और पाप ग्रहों के साथ लग्न से द्वितीय में चन्द्र हो।

१०. लग्न से ४।५ में सभी पापग्रह हों या पाप दृष्ट चन्द्र ६।८।१२ में हो।

११. शुभ दृष्टि-रहित रवि और चन्द्र लग्न से १२ में हो या सिंह लग्न में शुक्र, मंगल या शनि हो।

१२. शनि, चन्द्र और रवि क्रम से १२।२।८ में हों।

१३. लग्न से ६।८।१२ में चन्द्र, रवि और मंगल हों।

१४. लग्न या शुक्र से ५ में रवि दृष्ट राहु हो या पाप दृष्ट शनि लग्न से चतुर्थ हो।

१५. चन्द्र शुक्र का योग ६।८।१२ में हो या द्वितीयेश द्वादशेष शुक्र और चन्द्र के साथ लग्न में हो।

१६. लग्न से ६।८।१२ में लग्नेश और धनेश हो।

१७. शनि दृष्ट सिंह लग्न में चन्द्र सूर्य का योग हो।

१८. लग्न से १२ में मंगल वामनेत्र घातक और द्वितीय में शनि दक्षिण नेत्र घातक।

काण योग—

१. शुक्र और गुरु से दृष्ट मंगल या चन्द्र लग्न में हो।

२. मंगल दृष्ट सिंह राशिस्थ चन्द्र लग्न से सप्तम में हो।

३. मंगल दृष्ट रवि कर्क राशि में होकर लग्न से ७ में हो।

४. लग्न से १२ या ७ में चन्द्र शुक्र का योग हो।

५. लग्न से १२ में चन्द्र और ६ में रवि।

६. लग्न में रवि चन्द्र का योग हो और उसे शुभ और पाप देखते हों तो बुद्बुद लोचन हो।

७. पापग्रह के साथ सूर्य १२।९।५ में हो।

भाव फल विचार—

इष्टं पादविवृद्ध्या मित्रस्वगृहत्रिकोणतुङ्गेषु।
रिपुभेऽल्पं फलमर्कोपगतस्य पापं शुभं नैव॥ ७॥

सं०—मित्रस्वगृहत्रिकोणतुङ्गेषु—मित्रग्रहस्वगेहमूलत्रिकोणस्वोच्चस्थानेषु, पादविवृद्ध्या = चरणवृद्धिक्रमेण, इष्टं=शुभंफलं, ग्रहः प्रयच्छति। रिपुभे= शत्रुगृहे स्थितो ग्रहः, अल्पं=चतुर्थांशादप्यल्पं, फलं प्रयच्छति। अर्कोपगतस्य= अस्तंगतस्य, ग्रहस्य, पापं=अशुभफलं, पूर्णं भवति किन्तु शुभं=शुभफलं, नैव=न भवतीत्यर्थः ॥ ७ ॥

हि०—जन्म समय जिस भाव राशि में ग्रह हो वह राशि उस ग्रह की मित्रराशि हो तो उस भाव का शुभ फल १ चरण, अपनी राशि होने से शुभ फल का आधा अर्थात् २ चरण, मूलत्रिकोण हो तो ३ चरण और उच्चराशि हो तो पूर्णशुभफल ४ चरण देता है। शत्रुक्षेत्रस्थ ग्रह १ चरण से भी अल्प फलकारक होता है। रवि के साथ अस्त ग्रह एवं नीचराशिस्थ ग्रह पूर्ण अशुभभावफल देते हैं किन्तु शुभभाव फल कुछ भी नहीं देते। अशुभ फल भी अस्त-नीच, शत्रुक्षेत्र, मित्रक्षेत्र, स्वक्षेत्र, मूलत्रि-कोण, और उच्चस्थानस्थ ग्रह क्रम से पूर्ण; पादोन, अर्द्ध, चतुर्थांश, चरणाल्प और शून्य होता है, अर्थात् अस्त या नीचस्थ ग्रह पूर्ण अशुभ फल, शत्रुक्षेत्रस्थ पादोन; मित्रक्षेत्रस्थ आधा, स्वराशिस्थ १ चरण, मूलत्रिकोणस्थ चरणाल्प और उच्चस्थ ग्रह शून्य फल देता है ॥ ७ ॥

वि०—उक्त श्लोक में शत्रु, मित्र के अतिरिक्त समराशिस्थ फल नहीं कहा गया है अतः समराशिस्थ फल मध्यम जानना चाहिये। नीच एवं अस्तमें शून्य फल होता है यह बृहज्जातक में है। यथा—

उच्च त्रिकोण स्वसुहृच्छत्रुनीचग्रहार्कगैः।
शुभं सम्पूर्णपादोनदलपादाल्पनिष्फलम् ॥

इति राशिशीलनिरूपणम्।

—: ० :—

आश्रययोग निरूपणम्

तत्र मेषादिराशिनवांश फलम्—

तस्करभोक्तृविचक्षणधनिनृपतिनपुंसकाऽभयदरिद्राः ।
खलपापोग्रोत्कृष्टा मेषादीनां नवांशभवाः ॥ १ ॥

सं०—मेषादीनां राशीनां नवांशभवाः=नवांशोत्पन्नाः तस्करभोक्तृविचक्षणादिगुणसम्पन्नाः भवन्ति। अर्थात् मेषनवांशगतलग्नोत्पन्नः तस्करः=चौरः, वृषनवांशे भोक्ता=भोगी, मिथुननवांशे विचक्षणः=पण्डितः कर्कनवांशे धनी=धनवान्,सिंहनवांशे नृपतिः=राजा,कन्यानवांशे नपुंसकः=पुंस्त्वहीनः,तुलानवांशे अभयः=शूरः, वृश्चिकनवांशे दरिद्रः=निर्धनः,धनुनवांशे खलः=दुष्टः, मकरनवांशे पापः=पापकर्मकर्ता, कुम्भनवांशे उग्रः=क्रूरकर्मा, मीननवांशे उत्कृष्टः=श्रेष्ठः पुरुषः, भवतीत्यर्थः ॥ १ ॥

हि०—जिसके जन्मलग्न में मेष नवांश हो वह चोर, वृषनवांश हो तो भोगी, मिथुननवांश हो तो चतुर पण्डित, कर्कनवांश हो तो धनी, सिंहनवांश हो तो राजा, कन्यानवांश हो तो नपुंसक, तुलानवांश हो तो शूर, वृश्चिकनवांश होने से निर्धन, धनुनवांश हो तो दुष्ट, मकरनवांश होने से पापी, कुम्भनवांश हो तो हिंसक और मीननवांश हो तो श्रेष्ठ पुरुष होता है ॥ १ ॥

वि०—नवांश का फल जो कहा गया है वह यदि वर्गोत्तम नवांश का हो तो नवांश फल का अधिप जानना चाहिये। वृहज्जातक में "वर्गोत्तमांशेष्वेषामीशा राशिवद् द्वादशांशैः" यह कहा गया है। द्वादशांश के फल राशिफल के समान होते हैं।

स्वगृहादिगत ग्रहाणां फलानि—

कुलतुल्यकुलाधिकबन्धुमान्यधनिभोगिनृपसमनरेन्द्राः ।
स्वर्क्षगतैकविवृद्धया किञ्चिन्न्यूनाः सुहृद्गृहगैः ॥ २ ॥

सं०—एक विवृद्ध्या=एकाधिकग्रहवृद्धिक्रमेण. स्वर्क्षगतैः=स्वराशिस्थितैः ग्रहैः, कुलतुल्यकुलाधिकादयो भवन्ति। अर्थात् यस्य जन्मकाले एकोग्रहः स्वगृहगतो भवति स जातकः कुलतुल्यः=स्वकुलसमो, भवति। द्वौ स्वक्षेत्रस्थौ तदा कुलाधिकः=निजकुलश्रेष्ठः, त्रयः स्वगृहगतास्तदा बंधुमान्यः, चत्वारोग्रहाः स्वगेहस्थास्तदा धनी,पञ्चनिजक्षेत्रस्थास्तदा भोगी, षट्ग्रहाः स्वभवनस्थास्तदा,

नृपसमः=राजतुल्यः, सप्तग्रहाश्चेत्स्वगृहस्थाःतदा जातकः नरेंद्रः=नृपः, भवति। सुहृद्गृहगैः=मित्रभवनस्थैर्ग्रहैः, किञ्चिन्न्यूनाः भवन्ति ॥ २ ॥

हि०—जिस जातक के जन्म समय १ ग्रह स्वगृही का हो वह कुलसदृश, दो हो तो कुल में श्रेष्ठ, तीन होने से बन्धु पूज्य, चार हो तो धनवान, पाँच होने से भोगी छह हो तो राजा के समान सुख भोगने वाला और सात होने से राजा होता है। इसी तरह मित्रगृहगत ग्रहों का फल पूर्वोक्त फल की अपेक्षा कुछ न्यून होता है ॥ २ ॥

विशेष—वृहज्जातक में मित्र गृहस्थ एकाधिक ग्रहों का फल निम्नरीति से वर्णित है—

परविभवसुहृत्स्वबन्धुपोष्या गणपबलेशनृपाश्च मित्रभेषु ।

१ मित्र गृही हो तो अन्य धन से पालित, २ में मित्र द्वारा, ३ में स्वजाति द्वारा ४ में बन्धुद्वारा, ५ में नायक, ६ में सेनापति और ७ ग्रह मित्र घर का होने से जातक राजा होता है।

उच्चस्थ ग्रहाणां फलानि—

त्रिप्रभृतिभिरुच्चस्थैर्नृपवंशभवा भवन्ति राजानः ।
पंचादिभिरन्यकुलोद्भवाश्च　　तद्वत्त्रिकोणगतैः ॥ ३ ॥

सं०—त्रिप्रभृतिभिः=त्रिचतुर्भिः, ग्रहैः, उच्चस्थैः=स्वोच्चराशिगतैः, नृपवंशभवाः=राजकुलोत्पन्ना, राजानः=नृपाः, भवन्ति। पञ्चादिभिः=पंच-षड्सप्तभिग्रहैः, उच्चगतैः, अन्यकुलोद्भवाः=राजकुलातिरिक्तवंशोत्पन्नाः, नृपाः भवन्ति। त्रिकोणगतैः=मूलत्रिकोणस्थितैर्ग्रहैः, तद्वत् = उच्चगतग्रहफलवत्, फलं ज्ञेयमिति ॥ ३ ॥

हि०—जन्म समय में तीन या चार ग्रह अपनी उच्चराशि में होने से राजवंशोद्भव जातक राजा होता है, अन्यथा धनी। यदि ५, ६ या ७ ग्रह उच्च में हों तो अन्य कुल में उत्पन्न भी जातक राजा होता है। इसी तरह मूलत्रिकोण में यदि ३ या ४ ग्रह हों तो राजकुलोद्भव, और ५।६।७ ग्रह हों तो अन्य कुल में उत्पन्न जातक भी राजा होता है ॥ ३ ॥

नीचराशिस्थ ग्रहाणां फलानि—

निर्धनदुःखितमूढव्याधितबन्धाभितप्तवधभाजः ।
एकोत्तरपरिवृद्ध्या　नीचगतैः　शत्रुगृहगैर्वा ॥ ४ ॥

सं०—एकोत्तरपरिवृद्ध्या=एकाधिकग्रहवृद्धिक्रमेण, नीचगतैः=नीचराशि-स्थैर्ग्रहैः वा शत्रुगृहगैः=शत्रुराशिगतैः, निर्धनदुःखितमूढादयः परिपाका

भवन्ति। यथा-एकः नीचैः वा शत्रुगृहे जातः निर्धनः, द्वाभ्यां दुःखितः, त्रिभिर्मूढः, चतुर्भिर्व्याधितः, पञ्चभिर्बन्धः, षड्भिरभितप्तः, सप्तभिर्वधभाजो भवतीति ॥ ४॥

हि०--१ ग्रह नीचराशि या शत्रुराशि में हो तो जातक निर्धन, २ में दुःखी, ३ में मूर्ख, ४ में रोगी, ५ में बन्धन, ६ में पीड़ित और ७ में बधभागी होता है। सातों ग्रह नीच में एक समय नहीं होंगे परन्तु शत्रु गृही के हो सकते हैं ॥ ४ ॥

राजयोगी--

एकोऽपि नृपतिजन्मप्रदो ग्रहः स्वोच्चगः सुहृद्दृष्टः।
बलिभिः केन्द्रोपगतैस्त्रिप्रभृतिभिरवनिपालभवः ॥ ५ ॥

सं०--स्वोच्चगः=स्वोच्चराशिस्थः, सुहृद्दृष्टः=मित्रावलोकितः, एकः, अपि, ग्रहः, नृपतिजन्मप्रदो=भूपजन्मदः, भवति। बलिभिः=बलिष्ठैः, त्रिप्रभृतिभिः=त्रिचतुष्टयादिभिर्ग्रहैः, केन्द्रोपगतैः=केन्द्रस्थितैः, अवनिपालभवः=नृपवंशोत्पन्नः, जातकः राजा भवति ॥ ५ ॥

हि०--मित्रग्रह से दृष्ट एक भी ग्रह यदि उच्च में हो तो जातक राजा होता है। तीन चार आदि ग्रह यदि बलवान् होकर लग्न से १।४।७।१० में हो तो राजकुल में उत्पन्न जातक राजा होता है ॥ ५ ॥

अन्य योगः—

वर्गोत्तमगे चन्द्रे चतुराद्यैर्वीक्षिते विलग्ने वा।
नृपजन्म भवति राज्यं नृपयोगे बलयुतदशायाम् ॥ ६ ॥

सं०--चतुराद्यैः=चतुष्प्रभृतिभिः, ग्रहैः, वीक्षिते=दृष्टे, चन्द्रे वा विलग्ने वर्गोत्तमगे=वर्गोत्तमनवांशस्थे, नृपजन्म=भूपतिजन्म, भवति। नृपयोगे सति, बलयुतदशायां=बलीग्रहदशान्तर्दशायां, राज्यं=राज्यप्राप्तिः, भवति ॥ ६ ॥

हि०—चार, पाँच या छह ग्रहों से दृष्ट चन्द्र या लग्न अपनी अपनी वर्गोत्तम नवांश में हो तो जातक राजा होता है। राजयोग रहने पर योगकारक बलीग्रह की दशा, अन्तर्दशा आदि में राज्य मिलता है ॥ ६ ॥

विशेष—अन्यान्य कुछ राजयोग नीचे दिये जाते हैं—

राजाधिराज योग—

१. ६ ग्रह उच्च में हों या नवमेश-पञ्चमेश से दृष्ट दशमेश और सुखेश परस्पर एक दूसरे के घर में हों।

२. लग्नेश के साथ नवमेश और पञ्चमेश लग्न से १।४।७।१० में हो।

३. चन्द्र से ३ में शनि-रवि, ४ में बुध-शुक्र और ११ में गुरु हों।

४. लग्न में गुरु, ७।४ में रवि और वक्री शुक्र ५ में हों।

५. लग्न से १० में मंगल, ९ में बुध, चन्द्र और शुक्र, तथा मेष राशि में रवि-गुरु का योग हो।

६. लग्न से ११ में शनि, कन्यालग्न में बुध, मीन में गुरु, धनु में शुक्र-मंगल, वृश्चिक में रवि हो।

७. लग्न से ९ में शनि, ५ में बुध-गुरु-शुक्र और उच्चराशि में मंगल हो।

८. सभी ग्रह चर राशि में हों।

९. लग्न से ३ में शनि, ६ में मंगल, १० में शुक्र, ९ में उच्चस्थ रवि हों।

१०. पञ्चमेश बली हो और केन्द्र में नवमेश-दशमेश का योग हो।

११. दशमेश देवलोकांश में, धनेश-नवमेश पारावतीश में, लाभेश गोपुरीश में हो।

१२. २।६।८।१२ इन राशियों में अथवा ३।५।९।११ इनमें सभी ग्रह हों।

१३. ६।७।९।१० इन राशियों में या ३।६।४।९।१२ में सभी ग्रह हों।

१४. १।३।५।६।८।९।११।१२ इन राशियों में सभी ग्रह हों।

भूपतियोग—

१. शनि, मंगल और गुरु उच्चस्थ हों तथा कर्क, तुला या मकर लग्न हो।

२. शनि, रवि और मंगल उच्चस्थ हों और मेष, तुला या मकर लग्न में हो।

३. उच्च राशिगत गुरु या रवि लग्न में हो तथा चन्द्र कर्क में हो।

४. कर्क में चन्द्र और उच्चस्थ शनि रवि में कोई एक लग्न में हो।

५. मेष या मकर लग्न हो, कर्क में चन्द्र और रवि-मंगल उच्च में हों।

६. कर्क लग्न में चन्द्र हो और गुरु-मंगल उच्च में हों।

७. तुला या मकर लग्न हो, कर्क में चन्द्र और शनि-मंगल उच्च में हो।

८. मेष लग्न में रवि और कर्क में चन्द्र या कर्क लग्न में चन्द्र-गुरु का योग हो।

९. मकर लग्न में मंगल या तुला लग्न में शनि और कर्क में चन्द्र हो।

१०. लग्न या चन्द्र से नवमेश और दशमेश ये दोनों परस्पर एक दूसरे के घर में हों।

११. चर लग्न हो और शनि, रवि, मंगल और गुरु उच्च में हों।

१२. लग्न में शनि, मकर में मंगल और धनु में रवि-चन्द्र हो।

१३ मकर लग्न में चन्द्र-मंगल और धनु में रवि हो।

१४. लग्न से ७ में चन्द्र-शनि, लग्न में रवि और धनु में गुरु हो।

१५. मेष या कर्क लग्न हो और मंगल मेष में, गुरु कर्क में हो।

१६. आत्मकारक से ३।६ में सभी पाप ग्रह हों।

१७. कर्क लग्न हो ४ में शनि मंगल, १० में बुध, गुरु, रवि और शुक्र हों।

१८. कुम्भ लग्न में शुक्र हो और चार ग्रह स्वगृही के हों।

१९. वली चन्द्र से दृष्ट शनि-मंगल नवम में हों।

२०. लग्नेश और शुभ ग्रह ३।६।१०।११ में हों।

२१. राहु मंगल और चन्द्र बली होकर लग्न से ५ में हों।

अध्यायस्थ विषयकथनम्—

उडुपतियोगसमागमभशीलसंदर्शनानि भावाश्च।
आश्रयराज्यप्रभावाश्चाध्यायेऽस्मिन् क्रमेणोक्ताः ॥ ७ ॥

सं०—स्पष्टम्।

हि०—इस प्रकीर्णाध्याय में उडुपति योग (चन्द्रयोग), समागम (द्विगृहादि योग), भशील (राशिशील), सन्दर्शन (दृष्टिफल), भाव (भावफल), आश्रय (नवांशादि फल), और राज्यप्रभाव (राज योग) क्रम से कहे गये हैं ॥ ७ ॥

इति लघुजातके प्रकीर्णाध्यायः द्वादशः।

—०—

अथ नाभसयोगाध्यायः ।

आश्रय योगाः—

चरभवनादिषु सर्वैराश्रयजा रज्जुमुसलयोगाः ।
ईर्ष्युर्मानी धनवान् क्रमेण कुलविश्रुताः सर्वे ॥ १ ॥

सं०—चरभवनादिषु=चरस्थिरद्विस्भावराशिषु, सर्वैः=सूर्यादिभिग्रहैः स्थिते स्तदा, आश्रयजा=आश्रययोगोद्भवाः, रज्जुमुसलनलयोगाः भवन्ति। अर्थात् सर्वेग्रहाश्चरराशिगतास्तदा रज्जुः, स्थिरभेषु गतास्तदा मुसलः, द्विस्वभाव-गतास्तदा नलयोगो भवतीति। तत्र क्रमेण रज्जुयोगोत्पन्नः जातकः ईर्ष्युः= परममत्सरः, भवति। मुसलोद्भवः मानी, नलोद्भवः धनवान् भवति। सर्वे आश्रययोगोद्भवाः, कुलविश्रुताः=स्वकुले विख्याताः, भवन्तीति ॥ १ ॥

हि०—चरराशियों में सभी ग्रह हों तो रज्जु नामक योग, स्थिर राशि में सभी ग्रह हों तो मुसल और द्विस्वभाव—राशि में सभी ग्रह होने से नलयोग होता है। ये तीनों आश्रय योग हैं। रज्जुयोग में उत्पन्न जातक ईर्ष्यावान्, मुसलयोग में मानी और नलयोग में धनी होता है। इन तीनों योगों में उत्पन्न जातक कुलविश्रुत होते हैं ॥ १ ॥

वि०—इस अध्याय में आश्रय, दल, आकृति और सांख्य योग के भेद से नाभस योग चार तरह के हैं। इनमें आश्रय योग के भेद ३, दल योग के भेद २, आकृति-योग के भेद २० और सांख्य योग के भेद ६ होते हैं। सभी के योग ३२ हैं।

दलयोगौ—

केन्द्रत्रयगैः पापैः शुभैर्दलाख्यावहिश्च माला च ।
सर्पेऽतिदुःखितानां मालायां जन्म सुखिनां च ॥ २ ॥

सं०—पापैः=पापग्रहैः, केन्द्रत्रयगैः=केन्द्रसम्बन्धिस्थानत्रयस्थैः, एवं शुभैः=शुभग्रहैश्च, दलाख्यौ=दल संज्ञकौ, अहिः=सर्पः, मालाः=मालां नामकः, च, योगौ भवतः। अर्थात्पापग्रहस्थितैः सर्पयोगः, शुभग्रहस्थैः माला योगो भवति। तत्र सप=सर्पयोगे, दुःखितानां जन्म भवति, मालायां=माला-योगे, सुखिनां च जन्म—भवतीत्यर्थः ॥ २ ॥

हि०—जन्म-समय किन्हीं तीन केन्द्र स्थान में केवल पाप ग्रह हों तो अहि (सर्प) योग और पाप रहित केवल शुभ ग्रह होने से माला नामक योग होता है। ये दोनों

दल संज्ञक योग हैं। सर्पयोग में उत्पन्न जातक दुःखी और मालायोग में सुखी होता है। ॥ २॥

वि०—यहाँ शुभ ग्रह से बुध, गुरु और शुक्र और पाप ग्रह—से शनि, रवि और मंगल जानना चाहिये। इस योग में चन्द्र का ग्रहण नहीं है।

आकृति संज्ञक गदादि योगाः—

द्विरनन्तरकेन्द्रस्थैर्गदाविलग्नास्तसंस्थितैः शकटम्।
खचतुर्थयोर्विहङ्गः शृङ्गाटकमुदयसुतनवगैः॥ ३॥
शृङ्गाटकतोऽन्यगतैर्हलमेतेषां क्रमात्फलोपनयः।
यज्वा शकटाजीवी दूतश्चिरसौख्यभाक्कृषिकृत्॥ ४॥

सं०—द्विरनन्तरकेन्द्रस्थैः = केन्द्रद्वयान्तरस्थैर्ग्रहैः, गदायोगो भवति। स लग्नचतुर्थं, चतुर्थसप्तम, सप्तमदशम एवं दशम लग्न वशेन चतुर्विधाः। विलग्नास्तसंस्थितैः=लग्नसप्तमस्थैर्ग्रहैः, शकटम=शकटाख्ययोगः, खचतुर्थयोः =दशमचतुर्थयोः, यदा ग्रहाः भवन्ति तदा, विहङ्गः=विहङ्ग योगः, उदयसुतनवगैः = लग्नपञ्चमनवमस्थैर्ग्रहैः, शृङ्गाटकं = शृङ्गाटक योगः, शृङ्गाटकतः =शृङ्गाटक योगतः, अन्यगतैः=अन्यस्थानस्थैर्ग्रहैः, हलम्=हलसंज्ञक योगः, भवति। एतेषां=गदादियोगानां, क्रमात् = क्रमेण, जातकः यज्वा=यज्ञकर्ता, शकटाजीवि = शकटेन आजीविकः, तद् = दूतकार्यकृत, चिरसौख्यभाक् = चिरसुखी, कृषिकृत् = कृषकः, भवतीति फलोपनयः=फलादेशः॥ ३-४॥

हि०—लग्न से १।४।७।१० ये स्थान केन्द्र संज्ञक हैं। इनमें समीपस्थ दो केन्द्र स्थान में सभी ग्रह होने से गदा योग होता है। यह चार तरह का होगा जैसे लग्न और चतुर्थ में सभी ग्रह होने से १, चतुर्थ-सप्तम में होने से २, सप्तम-दशम में होने से ३, और दशम लग्न में होने से ४।

लग्न और सप्तम में सभी ग्रह होने से शकट योग, दशम और चतुर्थ में सभी ग्रह पड़ जाँय तो विहङ्ग योग, लग्न, पञ्चम और नवम में सभी ग्रह हों तो शृङ्गाटक योग और १।५।९ से भिन्न स्थानों में परस्पर त्रिकोणस्थ ग्रहवश हलयोग होता है। हल योग त्रिविध है जैसे लग्न से २।६।१० में सभी ग्रह हों तो १।३।७।११ में ग्रह हों तो २ और ४।८।१२ में ग्रह हों तो ३। गदा योग में उत्पन्न जातक यज्ञकर्ता, शकट योग में गाड़ी से जीविका करने वाला, विहङ्ग योग में दूतकार्य करने वाला, शृङ्गाटक योग में चिरसुखी और हलयोग में कृषक होता है॥ ३-४॥

वज्रादि योगाः—

क्रूरैः सुखकर्मस्थैः सौम्यैर्वज्र[illegible]

यव इति तद्विपरीतैर्मिश्रैः कमलं च्युतैर्वापी ॥ ५ ॥
लग्नादिकण्टकेभ्यश्चतुर्गृहावस्थितैर्ग्रहैर्योगाः ।
यूपेषुशक्तिदण्डा वज्रादीनां फलान्यस्मात् ॥ ६ ॥

सं०—क्रूरैः=पापग्रहैः, सुखकर्मस्थैः=चतुर्थदशमस्थैः, सौम्यैः=शुभग्रहैः, उदयास्तसंस्थितैः=लग्नसप्तमस्थैः, तदा वज्रम्=वज्रयोगः, तद्विपरीतैरर्थात् चतुर्थदशमस्थैः शुभग्रहैः, लग्नसप्तमस्थैः पापग्रहैस्तदा यव=यव संज्ञकः योगः, मिश्रैः=शुभपापैः, केन्द्रस्थैस्तदा कमलं=कमल योगः, च्युतैः=केन्द्रस्थानरहितैः ग्रहैः वापी योगोभवतीति । लग्नादिकण्टकेभ्यः=लग्नादिकेन्द्रेभ्यः, चतुर्गृहावस्थितैः=चतुःस्थानस्थितैर्ग्रहैः, क्रमेण यूपेषुशक्तिदण्डाश्चत्वारो योगाः भवन्ति, यथा लग्नाच्चतुर्थपर्यन्तं सर्वे ग्रहाःस्तिास्तदा यूपः, चतुर्थात्सप्तमपर्यन्तं यदि ग्रहास्तदा इषुयोगः,सप्तमाद्दशमपर्यन्तं सर्वे ग्रहास्तदा शक्ति योगः,दशमाल्लग्नावधि यदि सर्वे ग्रहास्तदा दण्ड योगः । अग्रे वज्रादीनां योगानां फलानि कथयन्ति आचार्याः ॥ ५-६ ॥

हि०—लग्न से ४।१० में सभी पाप ग्रह हों और १।७ में सभी शुभ ग्रह हों तो वज्रयोग होता है । इसके विपरीत अर्थात् ४।१० में शुभ ग्रह और १।७ में पाप ग्रह होने से यव योग, १।४।७।१० में सभी पाप और शुभ ग्रह हों तो कमलयोग और केन्द्र (१।४।७।१०) में ग्रह नहीं रहने पर वापीयोग होता है । यह वापीयोग स्थान वश द्विविध होता है जैसे लग्न से २।५।८।११ में सभी ग्रह के रहने पर प्रथम और ३।६।९।१२ में सभी ग्रह होने से द्वितीय वापीयोग होगा ।

लग्न से चतुर्थ पर्यन्त सभी ग्रह हों तो यूपयोग, चतुर्थ से सप्तम पर्यन्त में इषुयोग, सप्तम से दशम पर्यन्त में शक्तियोग और दशम से लग्न पर्यन्त सभी ग्रह हों तो दण्डयोग होता है । आगे इन वज्रादि योगों का फल कहा गया है ॥५-६॥

वि०—लग्न से ४।१० में पाप और ११।७ में शुभ ग्रह होने से वज्रयोग होता है । वाराह मिहिर के अनुसार क्षीण चन्द्र, रवि, शनि, मंगल पाप ग्रह हैं, पाप के साथ बुध भी पापी होता है । उक्त वज्र योग में रवि चतुर्थ और बुध-शुक्र प्रथम में अथवा रवि दशम में और बुध-शुक्र सप्तम में होने से ही वज्रयोग की पूर्णता होगी, परन्तु रवि से बुध-शुक्र का अन्तर तीन राशि का होना संभव नहीं है, क्योंकि मध्यम रवि, बुध और शुक्र समान होते हैं । मध्यम रवि में मन्दफल संस्कार से स्पष्ट होता है और मध्यम बुध-शुक्र में मन्द और शीघ्र दो फल संस्कार करने पर स्पष्ट बुध-शुक्र होते हैं । अतः रवि और बुध का परम अन्तर रवि का परम मन्द फल, बुध का परम मन्द और शीघ्र फल इन तीनों का योग तुल्य होगा । "मन्दोच्चनीच

परिधिः" इस के अनुसार बुध का परम मन्द फल अंशादि ६।१५।४, शुक्र का १।४४।३६ रवि का परम मन्द फल—२।१०।३१, बुध का परम शीघ्र फल अंशादि= २१।३१।४३। शुक्र का परम शीघ्रफल १।२० है। बुध का परम मन्द और शीघ्रफल का योग २७।३३।२७ होता है। इसमें रवि का परममन्दफल जोड़ने से २९।४४।८ होता है। इस हेतु रवि से पूर्व या पश्चात् बुध १ राशि के अन्तर पर रह सकता है। इसी तरह शुक्र का भी होगा।

इसी दृष्टि से ग्रन्थकार ने वृहज्जातक में लिखा है कि मैंने पूर्वशास्त्र के अनुसार वज्रादि योग लिखा है वस्तुतः सूर्य से चतुर्थ बुध या शुक्र न होने से योग का होना संभव नहीं है जैसे—

पूर्वशास्त्रानुसारेण मया वज्रादयः कृताः।
चतुर्थभवने सूर्यात् ज्ञसितौ भवतः कथम्॥

मल्ल के मत से बुध का परम शीघ्र फल ३१ अंश है, अतः फलत्रय योग ३८।१२।८५ होता है। इसके अनुसार राश्यन्त में रवि हो तो उस से तृतीय बुध हो सकता है।

प्राचीन मत का समाधान—

यवनादि आचार्योक्त वज्रयोग हैं। उनके मत में रवि क्रूर हैं पाप ग्रह नहीं हैं जैसे "क्रूरग्रहोऽर्कः" इत्यादि। इस हेतु रवि के अतिरिक्त शनि-मंगल, क्षीण चन्द्र पाप ग्रहों द्वारा उक्त योग बनेगा ही। वस्तुतः पाप ग्रह केवल शनि, मंगल और शुभ ग्रह बुध-शुक्र हैं। इनकी स्थिति से वज्र और यव योग होगा। सूर्य जगत का आत्मा है अतः उसे पाप ग्रह मानना उचित नहीं। तापमय होने से क्रूर कथन युक्ति संगत है। अथवा दो योग मानने से भी वह दोष नहीं रहेगा जैसे १।४ में पाप ग्रह हों या १।४ में शुभ ग्रह हों। परन्तु ऐसा विकल्प का आधार यवनेश्वरादि के मत से सिद्ध नहीं होता। यह स्वकल्पित कहा जायगा।

प्राचीन ग्रन्थ में वा का प्रयोग होने से ग्रन्थकार खण्डन नहीं करते। उन्होंने रवि को पाप ग्रह मानकर योग का खण्डन किया है। परन्तु प्राचीन की दृष्टि में रवि के अतिरिक्त पाप ग्रह हैं। इस लिये वज्र या यव योग असंभव नहीं है।

वज्रादियोगानां फलानि—

आद्यन्तयोः सुखयुतः सुखभाङ्मध्ये धनान्वितोऽल्पसुखः।
त्यागी हिंस्रो धनवर्जितः पुमान् प्रियैर्वियुक्तश्च॥७॥

सं०—वज्रयोगे जातः, आद्यन्तयोः=बाल्यवार्धक्ययोः सुखयुतः=सुखी,

स्यात्। यवयोगे मध्ये=यौवने, सुखभाग्=सुखभोक्ता, कमलयोगे धनान्वितः=धनवान्, वापीयोगे अल्पसुखः=स्वल्पसुखी, यूपे त्यागी, इषुयोगे हिंस्रः=हिंसकः, शक्तियोगे धनवर्जितः=निर्धनः, दण्डयोगे प्रियैः=स्त्रीपुत्रादिभिः वियुक्तः=रहितः, पुमान्=पुरुषो, भवति ॥ ७ ॥

हि०—वज्रयोग में बाल्य और वृद्धावस्था में सुखी, यव योग में युवावस्था में सुखी, कमल योग में धनी, वापी योग में अल्प सुखी, यूप में त्यागी, इषु में हिंसक, शक्ति में निर्धन और दण्ड योग में उत्पन्न जातक प्रियजन से रहित होता है ॥ ६ ॥

नौकूटाद्याः सप्त योगाः—

तद्वत् सप्तभसंस्थैर्नौकूटच्छत्रकार्मुकाणि स्युः ।
नावाद्यैरप्येवं कण्टकान्यस्थैः स्मृतोऽर्धशशी ॥ ८ ॥

एकान्तरैर्विलग्नात्षड्भवनावस्थितैर्ग्रहैश्चक्रम् ।
अर्थाच्च तद्वदुदधिर्नौप्रभृतिफलान्यथो क्रमशः ॥ ९ ॥

सं०—तद्वत्=पूर्ववदर्थात् लग्नादिकेन्द्रादारभ्य, सप्तमसंस्थैः=सप्तराशिस्थितैर्ग्रहैः, नौकूटादयोयोगाः भवन्ति। यथा लग्नात्सप्तस्थानस्थैर्ग्रहैः नौका योगः, चतुर्थाद् दशमस्थानान्तस्थैः कूट योगः, सप्तमाल्लग्नान्तस्थैर्ग्रहैः चाप योगः, दशमाच्चतुर्थान्तस्थैर्ग्रहैः चाप योगः। एवं नावाद्यैः=नौकूटादयैर्योगैः, अपि, कण्टकान्यस्थैः=केन्द्रभिन्नस्थानगतैर्ग्रहैः, अर्धशशी=अर्धचन्द्राख्यः योगः, स्मृतः=कथितः। विलग्नात्=लग्नादारभ्य, एकान्तरैः=एकस्थानान्तरैः, षड्भवनावस्थितैर्ग्रहैः,चक्रम्=चक्रयोगो भवति। अर्थात्=द्वितीय स्थानादारभ्य, तद्वत्=पूर्ववदर्थात् एकान्तरैः=षड्भवनावस्थितैर्ग्रहैः, उदधि संज्ञक योगः। अथ=अथानन्तरं, क्रमशः नौप्रभृतियोगानां फलानीत्यग्रे सन्ति ॥ ८–९ ॥

हि०—लग्नादि केन्द्र स्थान से सात घरों में यदि सभी ग्रह हों तो नौका आदि चार योग होते हैं, जैसे लग्न से ७ स्थान तक सभी ग्रह होने से नौका योग, चतुर्थ से दशम स्थान पर्यन्त सभी ग्रह हों तो कूट योग, सप्तम से लग्न तक सभी ग्रह हों तो छत्र योग और दशम से चतुर्थ पर्यन्त सभी ग्रह होने से कार्मुक योग होता है।

इसी तरह केन्द्र से भिन्न स्थान स्थित ग्रहवश अर्धचन्द्र नामक योग होता है, जैसे द्वितीय से अष्टम तक सभी ग्रह हों, या तृतीय से नवम तक में, पञ्चम से एकादश तक में, षष्ठ से द्वादशस्थानपर्यन्त में, अष्टम से द्वितीय तक में, नवम से तृतीय तक में, एकादश से पञ्चम तक में और द्वादश से षष्ठ स्थान में सभी ग्रह होने से अष्टविध अर्धचन्द्र योग होता है।

'लग्न से एकान्तर छह स्थानों में अर्थात् १।३।५।७।९।११ इन स्थानों में सभी ग्रह हों तो चक्र योग होता है।

यदि द्वितीय स्थान से पूर्ववत् ग्रह हों अर्थात् २।४।६।८।१०।१२ इनमें सभी ग्रह हों तो उदधिनामक योग होता है। सारांश यह है कि लग्न से विषम राशियों में ग्रह हों तो चक्र और समराशिवश उदधि योग होता है। इस के बाद नौका आदि योगों के फल कहे जाते हैं ।। ८-९ ।:

नौकादि योग फलानि—

कीर्त्यायुक्तोऽनृतवाक् स्वजनहितः शूरसुभगधनीभूपाः ।
इत्याकृतिजा योगा विंशतिरात्मगुणैस्तेषु नन्दन्ते ।।१०।।

सं०—स्पष्टम्।

हि०—नौका योग में उत्पन्न जातक कीर्तियुक्त, कूट योग में अनृतवाक् (मिथ्याभाषी), छत्र योग में परिवारादि निज जनों का पोषक, कार्मुक योग में शूर, अर्धचन्द्र में सुभग (सुन्दर स्वरूप), चक्र योग में धनवान् और उदधि योग में राजा हो। उक्त गदादि आकृति योग की संख्या २० हैं। इन योगों में उत्पन्न जातक योगोद्भूत गुण से आनन्द रहते हैं ।। १० ।।

गोलादि योगाः—

एकादिगृहोपगतैरुक्तान् योगान्विहाय सङ्ख्याने ।
गोल-युग-शूल-केदार-पाश-दामाख्य-वीणाः स्युः ।। ११ ।।

सं०—उक्तान्=कथितान्, योगान्=रज्जुमुशलादि योगान्, विहाय=त्यक्त्वा, एकादिगृहोपगतैः=एकादिस्थानगतैर्ग्रहैः, क्रमेण संख्याने=संख्या संज्ञक-योगे,गोलयुगशूलादयो योगाः स्युरिति,यथा एक स्थाने सर्वे ग्रहास्तदा गोल योगः। स्थानद्वये सर्वे गहास्तदा युग योगः, त्रिषुस्थानेषु गहाश्चेत्तदा शूल योगः, चतुर्षु स्थानेषुग्रहास्तदा केदारः, स्थान पञ्चके सर्वे ग्रहास्तदा पाश योगः, स्थानषट्के ग्रहास्तदा दामाख्यः, सप्तसु स्थानेषु सर्वे ग्रहास्तदा वीणा योगो भवतीति ।।११।।

हि०—उक्त रज्जुप्रभृति योगों के अतिरिक्त यदि एक स्थान में सभी ग्रह अर्थात् सप्त ग्रह हों तो गोल योग, दो स्थानों में सभी ग्रह हों तो युग योग, ३ स्थानों में शूल योग, ४ स्थान के वश केदार, ५ स्थान वश पाश, ६ स्थान वश दाम और ७ स्थान में सभी ग्रह हों तो वीणा योग होता है ।। ११ ।।

गोलादियोगानां फलानि—

दुःखितदरिद्रघातकक्षुधितकुशीलपशुपतिनिपुणानाम् ।

जन्म क्रमेण सुखिनः परभाग्यैस्सर्वं एवैते ॥ १२ ॥

सं०—गोलादि योगे क्रमेण दुःखित दरिद्र, घातक कृषिकर दुःशील पशुपति निपुणानां जन्म भवति। एते सर्वे परभाग्यै सुखिनो भवन्तीति ॥ १२ ॥

हि—गोल योग में उत्पन्न जातक दुःखी, युग योग में दरिद्र, शूल में घातक, केदार में कृषक, पाश में दुष्ट स्वभाव, दाम में पशुपालक और वीणा योग में चतुर होता है। इन योगों में उत्पन्न जातक परभाग्य से ही सुखी रहते हैं ॥ १२ ॥

विशेष—इस अध्याय में आश्रय योग, दल योग, आकृति योग और सांख्य योग कहे गये हैं। इन योगों का भेद ३२ होता है। योगों पर विचार करने से आश्रय योग के समान अन्य योग भी बनते हैं जैसे चर राशि में ग्रह योग से रज्जु और स्थिर राशि में मुशल और द्विस्वभाव में नल योग होता है। इसी तरह तीन केन्द्र स्थान में पाप ग्रहवश दल योग संज्ञक सर्प और शुभवश माला योग होता है।

मान लिजिये कि मेष लग्न है और मेष, कर्क और तुला में सभी ग्रह हैं। ऐसी स्थिति में चर राशिस्थ ग्रह होने से रज्जु योग और केन्द्रत्रयस्थ ग्रह वश दल योग भी होगा। इसी तरह वृषादि लग्नवश मुशलादि योग और दल योग की समानता होगी। यदि कहा जाय कि सभी चर में ग्रह होने पर रज्जु योग होंगे तो वह मुनिवचनों से विरुद्ध होगा। इस सम्बन्ध में गार्गि का वचन निम्न हैं—

एको द्वौ वा त्रयः सर्वे, चरा युक्ता ग्रहैर्यदा।
चर योगस्तदा रज्जूः धीर्ष्यांणां जन्मदो भवेत् ॥

इस आधार पर गदा आदि योग एवं वज्र आदि योग तथा गोल योग आश्रय योग के समान हो जाते हैं। यदि सभी-चरादि राशियों में ग्रहों की स्थिति मानकर आश्रय योग माना जाय तो भी कई योग उसके समान बनते हैं। इसी दृष्टि से ग्रन्थ-कार ने फलादेश का विचार वृहज्जातक में किया है जैसे—

आश्रयोक्तास्तु विफला भवन्त्यन्यैर्विमिश्रिताः।
मिश्रा यैस्ते फलं दद्युरमिश्राः स्वफलप्रदाः ॥

इसका भाव यह है कि यदि आश्रय योग में अन्य योगों के लक्षण घटें तो आश्रय योग का का फल न होकर अन्य योग का फल होगा। जो योग किसी योग से मिश्रित न होगा उसका फल पूर्ण होता है।

सांख्य योग (गोलादि योग) में आकृति याने नौका आदि योग के लक्षण घटते हैं, इसलिए नव संख्या के लक्षणों को छोड़कर अतिरिक्त लक्षण में सांख्य योग का होना

कहा गया है। अतः यदि सांख्य और आकृति योग का फल होगा। क्योंकि—निरवकाशविधि—सावकाश विधि का बाधक होता है। नाभस योग्याध्याय में जिस योग का फल काल कहा गया है उसको छोड़कर अन्य सभी योगों का फल जीवन भर होता है।

योगों के नाम पर विचार—

चरादि राशि के आश्रय होने से उसका नाम आश्रय योग पड़ा। ग्रहों के पाप और शुभ के भेद से दो दल हैं और दल योग उसी के द्वारा होता है अतः उसका नाम दल योग पड़ा। आकाश में ग्रह योग से जो आकृति बनती है तदनुसार आकृति योग कहा गया है। स्थान संख्या के आधार पर गोलादि योग होते हैं अतः उसका नाम संख्या योग है। प्रत्येक योग के भेदों में जो नाम हैं वे योगाकृतिवश महर्षियों के कल्पित नाम जानना चाहिए।

इति लघुजातके नाभसयोगाध्यायस्त्रयोदशः

—०—

अथ स्त्रीजातकाध्यायः

स्त्रीस्वरूपादि ज्ञानम्—

स्त्रीपुंसोर्जन्मफलं तुल्यं किन्त्वत्र लग्नचन्द्रस्थम् ।
तद्बलयोगाद्वपुराकृतिश्च सौभाग्यमस्तमयात् ॥ १ ॥

सं०—स्त्रीपुंसोः=स्त्रीपुरुषयोः, जन्मफलं=जन्मकुण्डलीस्थग्रहफलम्, तुल्यं=समानं, भवति। किन्तु, अत्र लग्नचन्द्रस्थं=लग्नचन्द्रस्थितराशिफलं, विशेषेण विचारणीयम्। तद्बलयोगात्=तयोर्लग्नचन्द्रयोर्बलाधिक्ययोगवशात्, स्त्रीणां, वपुः=आकृतिः=स्वरूपं, च, ज्ञेयम्। अस्तमयात्=सप्तमस्थानात्, सौभाग्यं=पतिसुखादिकं, विचारणीयमिति ॥ १ ॥

हि०—स्त्री और पुरुष के जन्मकुण्डलीस्थ ग्रह फल सभी समान होते हैं परन्तु स्त्री कुण्डली में लग्न राशि तथा चन्द्रराशिवश स्त्री के स्वरूपादिफल विचारना चाहिये। सबल लग्न राशि तथा चन्द्र राशि के अनुसार सुन्दर स्वरूपादि और निर्बल के अनुसार कुरूपादि जानना चाहिये। और लग्न से सप्तम स्थान द्वारा सौभाग्य का विचार होता है अर्थात् शुभयुत दृष्ट सप्तम स्थान होने से या सप्तमेश सबल होने से उत्तम पति सुख और सौभाग्य हो। इस के विपरीत में विपरीत फल हो ॥ १ ॥

आकृतिविचारे विशेषः—

युग्मर्क्षे लग्नेन्द्वोः प्रकृतिस्था रूपशीलगुणयुक्ता ।
ओजे पुरुषाकारा दुःशीला दुःखिता चैव ॥ २ ॥

सं०—लग्नेन्द्वोः=लग्नचन्द्रौ, युग्मर्क्षे=समराशिगतौ, तदा प्रकृतिस्था=स्त्रीगता, रूपशीलगुणयुक्ता बालिका भवति। ओजे=विषमराशौ चेत्, तदा जाता पुरुषाकार=पुरुषाकृतिसमा, दुःशीला=दुष्टस्वभावा, दुःखिता=सुखविहीना, च भवति ॥ २ ॥

हि—लग्न और चन्द्र यदि समराशि में हों तो स्त्री के स्वाभाविक सुन्दर रूप, शील और गुण से युक्त होती है। यदि वे दोनों विषम राशि में हों तो कन्या पुरुष की आकृति के समान दुष्ट स्वभाव वाली और दुःखी होती है। यदि एक समराशि में और दूसरा विषम में हो तब मध्यमस्वरूपादि से युक्त होती है ॥२॥

पतिस्वरूपादि ज्ञानम्—

अबले सप्तमभवने सौम्येक्षणवर्जिते च कापुरुषः ।

भवति पतिश्चरभेऽस्ते प्रवासशीलो भवेद्कान्तो ॥ ३ ॥

सं०—सप्तमभवने=लग्नात्सप्तमगृहे, अबले=निर्बले, सौम्येक्षणवर्जिते=शुभदृष्टिरहिते, च, कापुरुषः=कुत्सितपुरुषः, भवति। विपरीते तु सद्गुणालंकृतः ज्ञेयः। अस्ते=सप्तमभवने, चरभे=चरराशौ, प्रवासशीलः=स्वगृहादन्यत्र निवसितुं स्वभावः, भ्रान्ती=भ्रमणशीलः, भवति। स्थिरभे स्वगेहस्थः, द्विभे मिश्रस्वभावः ॥ ३ ॥

हि०—लग्न से सप्तम स्थान शुभदृष्ट-रहित निर्बल हो तो स्त्री का पति कुत्सित याने नीच स्वभाव का होता है। चरराशि सप्तम गृह में हो तो घर से बाहर रहने का स्वभाव तथा भ्रमणशील होता है। स्थिर राशि में स्वगृही और द्विस्वभाव में मध्यम स्वभाव का होता है ॥ ३ ॥

वैधव्यादियोगाः—

बाल्ये विधवा भौमे पतिसन्त्यक्ता दिवाकरेऽस्तस्थे।
सौरे पापैर्दृष्टे कन्यैव जारं समुपयाति ॥ ४ ॥

सं०—भौमे=कुजे, अस्तस्थे=लग्नात्सप्तमस्थे बाल्ये=बाल्यावस्थायां, विधवा भवति। दिवाकरे=सूर्ये, सप्तमस्थे तदा पतिसन्त्यक्ता भवति। सौरे=शनैश्चरे, सप्तमस्थे, पापैः=पापग्रहैः, दृष्टे=अवलोकिते, सति कन्यैव=अविवाहितैव, जारं=परपुरुषं, समुपयाति=प्राप्नोति ॥ ४ ॥

हिन्दी—जिस स्त्री की जन्मकुण्डली में लग्न से सप्तम में मंगल हो वह बालविधवा होती है। यहाँ अशुभयुत-दृष्ट बली मंगल में वैधव्य योग जानना उचित है। शुभयुत-दृष्ट में नहीं। रवि सप्तम में हो तो विवाह के बाद पति उसे छोड़ देता है अथवा बराबर मतान्तर रहता है। इसमें भी बलाबल के विचार से फलादेश करना चाहिए। पाप से दृष्ट शनि सप्तम में हो तो कन्या अवस्था में ही परपुरुष से सम्पर्क होता है। शुभयुत या दृष्ट होने पर अशुभफल नहीं होता है ॥ ४ ॥

ब्रह्मवादिनीयोगः—

सितकुजजीवेन्दुसुतैर्बलिभिर्लग्ने समश्च यदि राशिः।
स्त्री ब्रह्मवादिनी स्यात्सुशास्त्रकुशला प्रतीता सा ॥ ५ ॥

सं०—बलिभिः=बलयुक्तैः, सितकुजजीवेन्दुसुतैः=शुक्रमंगलगुरुबुधैः, लग्ने=जन्मलग्ने, तथा च यदि लग्ने समराशिर्भवेत्तदा सा स्त्री सुशास्त्रकुशला=सम्यक् शास्त्रनिपुणा, प्रतीता=प्रसिद्धा, ब्रह्मवादिनी=ब्रह्मविद्यानिष्ठा, च स्यात् ॥ ५ ॥

हिन्दी—जिसकी कुण्डली में बली शुक्र, मंगल, गुरु, और बुध लग्न में हों तथा लग्न में सम (२।४।६।८।१०।१२) राशि हो तो वह स्त्री शास्त्र में निपुण, प्रसिद्ध और ब्रह्मविद्या (वेदान्त) जानने वाली होती है ॥ ५ ॥

फलादेशे विशेषः—

पुञ्जन्मफलं यद्यन्न घटति वनितासु तत्तासाम् ।
वक्तव्यं राज्याद्यं वृषणविनाशादि वा पापम् ॥ ६ ॥

सं०—पुं=पुरुषस्य, जन्मफलं, यद् यद्, वनितासु=महिलासु, न घटति, तत्फलं, तासां=वनितानां, पतिषु ज्ञातव्यम् । यथा राज्याद्यं शुभफलं वा वृषणविनाशादिपापं=गुप्ताङ्गहीनाद्यशुभं फलम्, स्त्रीषु न घटति तेन तत्फलं तद्भर्तुर्वक्तव्यम् । एवमन्यान्यपि ज्ञेयानि ॥ ६ ॥

हिन्दी—पहले "स्त्री पुंसोर्जन्मफलं तुल्यं" यह कहा गया है । उन फलों में जो फल स्त्री में घटने वाला न हो वह फल उसके पति में कहना चाहिए । जैसे राज्यादि प्राप्ति शुभफल वा वृषणविनाशादि (अण्डकोष-विनाश सम्बन्धी), अशुभफल स्त्री में घटने वाले नहीं हैं अतः उसके पति को इस तरह के फलादेश करना चाहिए ॥६॥

विशेष—स्त्री-कुण्डली के लग्न, राशि, भावगत ग्रह एवं विशेष योगफल नीचे दिये जाते हैं ।

मेष लग्न वा राशि—में जन्म होने से स्त्री चञ्चला, सत्यनिष्ठा, वातपित्त-प्रकृतिका, बन्धुजनानुरक्ता, दयालु, पतिपरायणा, कर्मदक्षा और सुन्दरी होती है ।

वृष—में कलावती, पतिप्रिया, विनीता, सहिष्णु, पुष्टदेहा, पुत्रादियुता, प्रसन्ना भाग्यवती और शास्त्रानुरक्ता होती है ।

मिथुन—में रतिप्रिया, पतिवश्या, संगीतादिकुशला, उदारा, व्यग्रकारिणी, धनाढ्या, सुशीला और सुरूपा होती है ।

कर्क—में देवद्विजभक्ता, मृदुभाषिणी, कोमलाङ्गी, चांचलप्रकृतिका, परोपकारयुक्ता, पतिप्रिया, संचयशीला, और सुखी होती है ।

सिंह—में उग्रस्वभावा, पूज्या, पराक्रमवती, मध्यमा, दयालु, कर्मासक्ता, मानिनी, शास्त्रप्रिया और सुखसम्पन्ना होती है ।

कन्या—में धनवती, कन्याप्रजा, कोमलाङ्गी, कलाकुशला, पवित्रा, सुशीला, सुखिनी, विनीता, सुन्दरी और पतिप्रिया होती है ।

तुला—में मनोज्ञा, पवित्रा, धर्मानुरागिणी, व्रतपरायणा, कृशाङ्गी, आलस्ययुक्ता, प्रणयहीना, लुब्धा, गर्विता, मध्यमरूपा और पतिपुत्रादियुक्ता होती है ।

वृश्चिक—में सुरूपा, कर्मरता, पतिप्रिया, गुणवती, विनया, सुखिनी, सञ्चयशीला भक्तिमती और हितकारिणी होती है ।

धनु—में व्रतासक्ता, कार्यदक्षा, गर्विता, मानिनी, तीर्थप्रिया, सुखिनी, कलाप्रिया, भाग्यवती और सुरूपा होती है ।

मकर में—कर्मरता, भाग्यवती, वातप्रधाना, क्रोधिनी, व्ययशीला, स्थूलदन्ता, नीतिपरा, सुदेहा, सौभाग्या और धनी होती है ।

कुम्भ में—स्थिरप्रकृतिका, सुरूपा, माननीया, धर्मरता, विद्याप्रिया, चतुरा, कन्याप्रजा, व्ययशीला, कफवातप्रकृतिका, मध्यमा, पतिप्रिया और आलसी होती है।

मीन में—धर्मप्रिया, सुन्दरी, सत्यप्रिया, कोमलाङ्गी, विनीता, कलाकौशलयुक्ता, विद्यावती, सुखिनी, पतिपुत्रादियुता, हितकारिणी और सुबुद्धिवाली होती है।

लग्नादि-द्वादशभावगत-रविफल—

लग्न में रवि हो तो तेजस्विनी, पित्तरोगयुता, क्रोधिनी, कृशाङ्गी, और मध्यम भाग्यवती हो।

द्वितीय में—मध्यधनी, कटुभाषिणी, द्वेषरता और पतिप्रिया हो।

तृतीय में—धनवती, सुन्दरी, रतिप्रिया, और भाग्यवती हो।

चतुर्थ में—रोगिनी, चिन्तायुक्ता, सुखहीना और दुष्टा हो।

पञ्चम में—भक्तिमती, विद्यायुक्ता, अल्पप्रजा, स्थूला और तीक्ष्णा हो।

षष्ठ में—प्रगल्भा, भाग्यवती, सुरूपा, शत्रुहन्त्री और धर्मरता हो।

सप्तम में—स्वामिसुखविहीना, मध्यमा, प्रणयहीना और भक्तिमती हो।

अष्टम में—धनहीना, नीचकर्मासक्ता, पतिसुखहीना, और रुग्णा हो।

नवम में—मध्यम-धन-धर्मयुक्ता, क्रुद्धा, परिवारपोषिका और सुरूपा हो।

दशम में—आलस्ययुक्ता, राजकार्यरता, पतिप्रिया, धनयुक्ता हो।

एकादश में—लोकमान्या, पुत्रादिसुखयुता, कर्मनिपुणा, सुरूपा हो।

द्वादश में—असद्व्ययकारिणी, अविनीता, निर्दया और द्वेषकारिणी हो।

चन्द्रफल—

लग्न में—चन्द्र हो तो सौम्यमूर्त्ति, धर्मकार्यरता, पतिप्रिया, धनयुक्ता और नम्रा हो।

द्वितीय में—धनाढ्या, सरला, बन्धुमान्या, मृदुभाषिणी, सौभाग्यवती हो।

तृतीय में—पराक्रमवती, सुखिनी, नीतियुक्ता, पतिप्रिया, दयायुक्ता हो।

चतुर्थ में—दानशीला, भक्तिमती, सुभोग्या, सुखिनी और विनीता हो।

पञ्चम में—विदुषी, कलाकौशलयुक्ता, पुत्रादिसुखोपेता, धर्मरता और पतिप्रिया हो।

षष्ठ में—रुग्ना, धनहीना, चञ्चला एवं शत्रुयुता हो।

सप्तम में—पतिपरायणा, धनाढ्या, धर्मशीला, मधुरभाषिणी, और विनम्रा हो।

अष्टम में—कुवेषा, रोगिणी, कुनेत्रा, क्रुद्धा, और कुत्सिता हो।

नवम में—धर्मरता, अनेकसुखोपेता, कलायुक्ता, पतिप्रिया हो।

दशम में—धनयुता, सुरूपा, विद्यावती, कर्मदक्षा, भाग्यवती और सदया हो।

एकादश में—प्रीतिमती, धनाढ्या, सुन्दरी, कलाप्रिया, पतिप्रिया, और दानशीला हो।

द्वादश में—चन्द्र असद्व्ययकारक और धनादिका बाधक होते हैं।

भौमफल—

लग्न में—मंगल रोगकारक तथा पतिघातक होता है। द्वितीय में—व्ययकारक, कामद और दुःशीलद। तृतीय में—आयवर्द्धक, भक्तिकारक, बुद्धिप्रद एवं नैरुज्यताप्रद। चतुर्थ में—क्रोधकारक, पतिनाशक, कार्यहानिकारक और लोकापवादकृत्। पञ्चम में—पुत्रबाधक, अशान्तिप्रद, स्ववर्गी होने से शुभफलद। षष्ठ में—शत्रुघातक, नैरुज्यताप्रद, अरिष्टनाशक एवं धनप्रद। सप्तम में—वैधव्यकारक, रोगद, धननाशक, तथा अकारण क्रोधकारक। अष्टम में—पतिघातक, रोगद, विरोधकारक और धननाशक। नवम में—लोकापवाद, रोग, विरोध और कुत्सित विचार। दशम में—भाग्यवर्द्धक, सम्मानद, गृहादि सुखद तथा कुसंगतिकारक। एकादश में—पतिसुख, सन्तोष, सुविचार, सुभोजन और लाभ। द्वादश में—पतिकष्ट, शारीरिक अस्वस्थता, व्यय और अयश हो।

बुधफल—

लग्न में बुध हो तो सुविचार, सत्यव्यवहार, विद्या, कला एवं धनलाभ। द्वितीय में—धनागम, सुभोजन, पतिसुख और सम्मान। तृतीय में—धनी, धार्मिक, पतिपुत्रादिसुख और सुविचार। चतुर्थ में—गृहादि सुख, धनपतिसन्ततिसुख और विद्या। पञ्चम में—अल्पसन्तान, मध्यमसुखादि, व्यय, विवाद एवं पतिसुख। षष्ठ में—शत्रुजय, सम्मान एवं सामान्य सुखादि। सप्तम में—विद्या, पतिसुख, सुगृह एवं पारिवारिक सुख, भ्रमण। अष्टम में—रोग, विवाद, कुविचार, भय एवं अपयश। नवम में—विद्या, भाग्य, धन और पतिसुखादिकारक। दशम में—सुविचार, विविध सुख, सौभाग्य और सम्मान। एकादश में—पतिसुखादि, लाभ, सुयश और धार्मिक प्रकृत्ति। द्वादश में—बुध अशुभकारक है। शुभयुतदृष्ट एवं स्ववर्गस्थ होने से शुभफल अन्यथा अशुभ जानना चाहिये।

गुरुफल—

लग्न में—गुरु हो तो भाग्य, धन गृहादि सुख, पतिसुख, एवं विविध सुख। द्वितीय में—नीतियुक्ता, धनवती, मधुरभाषिणी एवं पतिप्रिया हो। तृतीय में—प्रभावहीना, विवादप्रिया और मध्यमसुखोपेता हो। चतुर्थ में—गृह, पति, वाहन एवं पुत्रादि सुखकारक। पञ्चम में—शारीरिक एवं आर्थिक सुख। षष्ठ में—विद्या सुविचार, पतिसुख और प्रतिष्ठाकारक। सप्तम में—पतिपुत्रादि सुख, कला-कौशल, सम्मान एवं धन लाभ हो। अष्टम में—पतिसुखादि मध्यम, चिन्ता एवं अपयश। नवम में—धार्मिक विचार, सौभाग्य, धनलाभ, सम्मान, एवं पारिवारिक सुख। दशम में—गृह-वाहन-पतिपुत्रादि सुख, यश, विद्या और वैभव। एकादश में—सद्विचार, सुरूप, धनलाभ, पारिवारिक सुख। द्वादश में—भोग, भ्रमण, सद्व्यय एवं मध्यम सुख।

शुक्रफल—

लग्न में—शुक्र भाग्य, धर्म, धन और विद्याप्रद। द्वितीय में—कर्मदक्षता, मृदुवाक्, सुरूप, और धनलाभ। तृतीय में—पारिवारिक अशान्ति, सामान्य सुख। चतुर्थ में—भाग्य, विद्या, पति-पुत्रादिसुख, सम्मान, गृहसुख। पञ्चम में—विद्या, धनलाभ, पतिसुख, सद्विचार। षष्ठ में—मध्यम सुखादि एवं अयश। सप्तम में—विविध सुख, सुविचार, सुभोजन, कार्यदक्षता। अष्टम में—अयश, सुविचार, एवं सामान्य सुखादि। नवम में—पति-पुत्रादि सुख, धार्मिक भावना, कार्यपटुता, जनप्रियता। दशम में—धन, यश, सन्तति, गृहादि सुख एवं कुलश्रेष्ठता। एकादश में—सुरूप, धनादि सुख, लाभ और विचारदक्षता। द्वादश में—सन्तोषाभाव, व्यय, चञ्चल प्रकृति, वाक्पटुता और मध्यम सुखद।

शनिफल—

लग्न में—शनि नेत्ररोगद, कृशकारक, धनप्रद। द्वितीय में—धनहानिकारक, रोगप्रद, कुविचारकारक और मध्यम पतिपुत्रादि सुख। तृतीय में—पुत्रादिसुख, अरिष्टनाश, सम्मानपतिसुख और स्वतन्त्रविचार। चतुर्थ में—धन-सुखादिबाधक, अयशकारक, गृहसुखद, पञ्चम में—सन्तान बाधक, मध्यम विद्याप्रद, सद्विचार-बाधक। षष्ठ में—अरिष्टनाशक, धनपुत्रादि-सुखद, सम्मानकारक। सप्तम में—पतिसुखबाधक, रोगप्रद, कुविचार, व्यापारादि में लाभद, मध्यमसुखद। अष्टम में—पतिघातक एवं मध्यम शुभद। नवम में—मन्दबुद्धि, व्ययाधिक्य, कुसङ्गति से अपयश, मध्यमधनादि। दशम में—जीविकाप्रद, व्यसन से व्ययकारक, गृहादिसुखद, एकादश में—लाभद, विघ्ननाशक, पतिपुत्रादिसुखद, प्रतिष्ठा। द्वादश में—वातरोगकारक, असद्व्ययकारक, धनापहारक, और विरोधकारक होता है।

सुखदयोग—

लग्न में शुक्र-चन्द्र, बुध-चन्द्र, बुध-शुक्र या शुभ-ग्रहाधिक योग अथवा बुध, मंगल, गुरु और शुक्र समराशि के लग्न में हों, या सप्तम में शुभ ग्रह हों या पञ्चमेश लाभेश, सप्तमेश लाभेश, नवमेश कर्मेश, धनेश लाभेश का योग शुभ स्थानों में हों तो आजीवन सुखी रहती है।

सौभाग्ययोग—

सप्तम में शुभ ग्रह हों या सप्तमेश सप्तम में या केन्द्र त्रिकोण में शुभयुत दृष्ट हो, या सप्तमेश एवं शुभ ग्रह की दृष्टि सप्तम में हो, अथवा सप्तमेश बली होकर उच्च आदि अपने वर्ग में हों तो सौभाग्यशालिनी हो।

राजपत्नीयोग—

लग्न में गुरु, सप्तम में चन्द्र या स्ववर्गस्थ शुक्र दशम में हो, या शुभषड्वर्गस्थ गुरु चन्द्र से दृष्ट होकर केन्द्र में हो, या गुरुदृष्ट शुक्र-बुध सप्तम में और लग्न एकादश

में हो, या कन्यालग्नस्थ बुध और एकादशस्थ गुरु हो, या लग्न में शुक्र, शुभवर्गस्थ गुरु चतुर्थ में और बुध तृतीय में हो, या तीन-चार ग्रह शुभ षड्वर्गस्थ हो या केन्द्र में पाप ग्रह न हो और शीर्षोदय राशिस्थ चन्द्र सप्तम में हो, या गुरुदृष्ट चन्द्र उच्च राशिगत चतुर्थ हो, या बुध स्वगृही का चतुर्थ हो और शुक्रदृष्ट गुरु शुभषड्वर्ग में हों, या ३।६ में मंगल, स्थिरलग्न में गुरु और शुभवर्गस्थ शनि ११ में हो, या बली चन्द्र लग्न में, बुध १० में और मेष का रवि ११ में हो, या सूर्यषड्वर्गस्थ शुक्र ३ में एवं शनि ६ में हो, या एक-दो ग्रह उच्च में हों और स्ववर्गस्थ बुध स्थिर लग्न में हो, या कन्या लग्न में बुध, ११ में गुरु, २ में शुक्र और १० में चन्द्र होने से राजपत्नी योग होता है।

दाम्पत्यप्रीतियोग—

लग्नेश और सप्तमेश क्रम से लग्न और सप्तम में हो, या दोनों एक स्थान में हों या लग्नेश सप्तमेश में मैत्री हो या दोनों लग्न या सप्तम भाव के षड्वर्ग में हों तो दाम्पत्यप्रीति योग होता है।

वैधव्यादि अशुभयोग—

पापदृष्ट मंगल सप्तम में या पापयुतदृष्ट मंगल १।४।७।८।१२ में हों या इनमें विशेष पापग्रह हों, या लग्न चन्द्र से ७।८ में विशेष पापग्रह हों, या पापयुक्त राहु ८।१२ में मेष या वृश्चिक राशि का हो, लग्न-सप्तम एवं चन्द्र और चन्द्र से सप्तम पापग्रह हों, या क्षीणचन्द्र पापयुत दृष्ट होकर ६।८ में हो, या पापदृष्ट सप्तमेश और अष्टमेश दोनों परस्पर एक दूसरे की राशि में हों, या पापयुत दृष्ट षष्ठेश और अष्टमेश ६।१२ में हों या विशेष पापग्रह ८ में हों या लग्न चन्द्र से १।४।७।८।१२ में पाप ग्रह हो या ७।८ में पाप या मंगल राहु हों, या लग्न चन्द्र पापग्रह के बीच हों और ७।८ में पाप हों, या १।७ में पाप ग्रह हों, या अष्टमेश ७ में पापदृष्ट हों तो वैधव्य योग होता है।

वैधव्यभंगयोग—

लग्न या चन्द्र से शुभग्रह और सप्तमेश सप्तम में हों या सप्तमेश पूर्णबली होकर अपनी उच्च आदि की राशि में हो या शुभयुत दृष्ट हो तो वैधव्य योग नहीं लगता। मंगल के समान यदि अन्य पापग्रह हों तो चन्द्र एवं लग्न से सप्तम स्थान में शुभग्रह या सप्तमेश के योग से उसका परिहार होता है।

बन्ध्यादियोग—

लग्न से ८ में बुध हो तो काकबन्ध्या, शनि-रवि हों तो बन्ध्या या पापदृष्ट सप्तम भाव में पाप ग्रह की राशि हो या शुभयुत चन्द्र हो और शनि या मंगल की राशि (१।८।१०।११) लग्न हो तथा उस पर पापग्रह की दृष्टि हो, या अष्टम में रवि वा शनि स्वराशि का हो, या शनि-मंगल लग्न से अष्टम १।८।१०।११ इन

राशियों में हों, या रवि, चन्द्र, गुरु और मंगल लग्न या अष्टम में हो अथवा शनि के साथ ८ में हों, या १।२।४।५।१०।१२ में स्त्री कुण्डली में ग्रह हों तो पति का दोष और पति की कुण्डली में हों तो स्त्री का दोष, या पापयुक्त पापनवांशगत चन्द्र लग्न में हो, या तीन-चार पापग्रह धनु या मीन राशिगत पञ्चम भाव में हो तो वन्ध्या योग होता है। अष्टम में गुरु या शुक्र हो या पञ्चम या सप्तम में मंगल हो या उसकी दृष्टि हो या राहु का योग हो तो मृतवत्सा योग होता है।

विवाहकाल और दिशाज्ञान—

सप्तमेश जिस राशि में एवं नवांश हो उनके स्वामी तथा शुक्र और चन्द्र इन चारों में बली ग्रह की दशादि में या शुक्रयुत राशीश, धनेशस्थ राशीश, या सप्तमेशस्थ राशीश की दशादि में या सप्तमेश की राशि से ९।५ में गुरु जाने पर विवाह होता है।

पति और पत्नीग्रहों की साम्यता—

दोनों के लग्न और चन्द्र एक हों या परस्पर सप्तम हों या चन्द्र से सप्तम दूसरे का लग्न हो या एक का लग्न दूसरे के लग्न से ९।५ का हो, या एक की धनभाव की राशि दूसरे का लग्न ७ का शुक्र या चन्द्र हो या दोनों के सूर्य में समता या एक की राशि दूसरे की रवि राशि या लग्न हो, या एक का रवि दूसरे का चन्द्र हो, या दोनों का शुक्र एक राशि में हो, या एक की शुक्रराशि दूसरे का लग्न हो या एक के लग्न, रवि, चन्द्र और शुक्र से सप्तम में दूसरे के लग्न, रवि, चन्द्र और शुक्र हो, या लग्नेश, धनेश, सप्तमेश, चन्द्रराशीश और शुक्रराशीश की साम्यता हो। इस साम्यता के आधार पर किसके साथ किस लड़की की शादी होगी इसका ज्ञान हो सकता है।

विषककन्यायोग—

जिस की कुण्डली में पापयुत दो शुभग्रह शत्रुक्षेत्री होकर लग्न में हों या दो शुभग्रह लग्न में, दशम में १ पाप और दो पाप शत्रुक्षेत्र में हों तो विष-कन्या योग होता है। लग्न में शनि ५ में रवि और ९ में मंगल विषकन्यायोग-कारक है।

रवि दिन द्वितीया और श्लेषा नक्षत्र, शनि को सप्तमी और कृत्तिका, मङ्गल को द्वादशी और शतभिषा होने से विषकन्या योग होता है। रवि को द्वादशी-विशाखा, मङ्गल को सप्तमी-शतभिषा, शनि को द्वितीया और श्लेषा नक्षत्र के योग भी विष-कन्यासंज्ञक होते हैं।

नोट—अन्य सन्तान-आयु एवं भाग्य के विचार पुरुष जातक के समान जानना चाहिये।

इति लघुजातके स्त्रीजातकाध्यायश्चतुर्दशः।

—०—

अथ निर्याणाध्यायः

निधननिमित्तज्ञानम्—

सूर्यादिभिर्निधनगैर्हुतवहसलिलायुधज्वरामयजः ।
क्षुत्तृट्कृतश्च मृत्युः परदेशे नैधने चरभे ॥ १ ॥

सं०—निधनगैः=अष्टमस्थैः, सूर्यादिभिर्ग्रहैर्हुतवहसलिलादयः निधननिमित्तकाः भवन्ति । अर्थात् सूर्येऽष्टमस्थे हुतवहोऽग्निः, चन्द्रेऽष्टमस्थे सलिलं=जलम्, कुजेऽष्टमस्थे आयुधः, बुधेऽष्टमस्थे ज्वरः, गुरौ अष्टमस्थे आमयजः=आमयविकारोत्पन्नः, शुक्रेऽष्टमस्थे क्षुद्=क्षुधा, शनौ निधने तदा तृट्कृतः तृष्णाजनितहेतुको मृत्युर्भवतीति । नैधने=अष्टमे, चरभे=चरराशौ सति परदेशे, स्थिरभे स्वदेशे, द्विभे मार्गे च निधनं ज्ञेयमिति ॥ १ ॥

हि०—जन्मलग्न से अष्टम रवि हो तो अग्नि, चन्द्र हो तो जल, मंगल हो तो अस्त्र-शस्त्र, बुध हो तो ज्वर, गुरु हो तो आमय अर्थात् अजीर्णादिजन्य उदरविकार, शुक्र हो तो क्षुधा और शनि हो तो पिपासा मृत्यु के निमित्त होते हैं । यदि अष्टम में चर (१।४।७।१०) राशि हो तो परदेश में, स्थिर (२।५।८।११) राशि हो तो स्वदेश में और द्विस्वभाव (३।६।९।१२) राशि हो तो मध्यमार्गादि में मृत्यु होती है ।

अन्यः—

यो वा निधनं पश्यति बलवांस्तद्धातुकोपजो मृत्युः ।
लग्नात् त्र्यंशपतिर्वा द्वाविंशः कारणं मृत्योः ॥ २ ॥

सं०—यः बलवान् ग्रहः निधनमष्टमस्थानं पश्यति तद्धातुकोपजः मृत्युर्भवति । वा लग्नात् लग्नद्रेष्काणात् द्वाविंशः त्र्यंशपतिर्द्रेष्काणपतिः मृत्योः कारणं भवतीति ॥ २ ॥

हि०—यदि अष्टम में कोई ग्रह न हो तब बली जो ग्रह अष्टम स्थान को देखता है उस ग्रह के धातु के कोप से मृत्यु होती है जैसे रवि में पित्तप्रकोप, चन्द्र में कफ वात, मंगल में पित्त, बुध में वातपित्तकफ, गुरु में कफ, शुक्र में कफवात और शनि में वायुप्रकोप मृत्यु का कारण है । यदि कोई ग्रह अष्टम को न देखता हो तब लग्न में जो द्रेष्कारण हो उससे २२वाँ द्रेष्काण का स्वामी जो ग्रह हो वह मृत्यु का कारण होता है ॥ २ ॥

निधनानन्तरगमनस्थानज्ञानम्—

सुरपितृतिर्यङ्नरकान् गुरुरिन्दुसितावसृग्रवी ज्ञयमौ ।
रिपुरन्ध्रत्र्यंशकपा नयन्ति चाऽस्तारिनिधनस्थाः ॥ ३ ॥

सं०—अस्तारिनिधनस्थाः ग्रहाः सुरादिलोकान् नयन्ति । अर्थात् षष्ठसप्तमाष्टमस्थानस्थितग्रहाणां मध्ये यदि गुरुः बलवान् तदा देवलोकः, चन्द्रशुक्रौ पितृलोकदौ असृग्रवी = मंगलसूर्यौ, तिर्यङ्लोकदौ, ज्ञयमौ=बुधशनी, नरकलोकप्रदौ भवतः । रिपुरन्ध्रत्र्यंशपा च उक्तलोकान् प्रयच्छन्ति ॥ ३ ॥

हि०—जातक के जन्मलग्न मे ६।७।८ स्थानों में स्थित बलवान् गुरु से देवलोक, चन्द्र और शुक्र से पितृलोक, मंगल और रवि से तिर्यङ् (मृत्युलोक), और बुध-शनि से नरकलोक मरणानन्तर प्राप्त होता है । यदि उक्त स्थानों में कोई ग्रह न हों तब षष्ठ और अष्टम स्थानगत द्रेष्काणेशों में जो बली हो उसका लोक जानना चाहिये ॥ ३ ॥

मोक्षज्ञानम्—

षष्ठाष्टमकण्टकगो गुरुरुच्चो भवति मीनलग्ने वा ।
शेषैरबलैर्जन्मनि मरणे वा मोक्षगतिमाहुः ॥ ४ ॥

सं०—जन्मनि = जन्मकाले, वा मरणे=निधनकाले, षष्ठाष्टमकण्टकगः =षष्ठाष्टमकेन्द्रस्थः, गुरुर्यदि उच्चः=स्वोच्चस्तदा मोक्षः स्यात् । वा मीन लग्ने । शेषैः—गुरुवर्जितान्यैर्ग्रहैः, अबलैः = बलरहितैस्तदा मोक्षगतिमाहुः= मोक्षरूपगतिर्भवतीति प्राहुः ॥ ४ ॥

हि०—जन्मसमय या मरणसमय में लग्न से ६।८।१।४।७।१० इनमें किसी स्थान में गुरु उच्चराशि का हो तो मोक्ष होता है । अथवा मीन लग्न हो और गुरु को छोड़कर अन्य सभी ग्रह निर्बल हों तब भी मोक्ष होता है ॥ ४ ॥

ब्रह्मसायुज्ययोग—

लग्नेश लग्न को अष्टमेश अष्टम को और धर्मेश नवम स्थान को देखते हों, या बली दो शुभग्रह धर्मभाव में हों या सुख (चतुर्थ) में स्थित अष्टमेश निद्रावस्था में हो या शुभयुतदृष्ट अष्टमेश निद्रावस्था में हो तो मोक्ष हो । मीन राशिस्थ बुध लग्न से १० में हो या मीन का मंगल १० में हो, अथवा जिस स्थान में चार ग्रह हों उसका स्वामी केन्द्र या त्रिकोण में हो; तो ब्रह्मसायुज्य होता है ।

कारकांश लग्न से १२ में मेष या धनु राशि हो और उसमें शुभग्रह हों, या कारकांश लग्न से १२ में केतु हो, अथवा शुक्र ऐरावतांश में, गुरु पारिजातांश में और चन्द्र सिंहासनांश में होने से मुक्ति मिलती है ।

पूर्वलोकस्थितिज्ञानम्—

गुरुरुडुपतिशुक्रौ सूर्यभौमौ यमज्ञौ
विबुधपितृतिरश्चो नारकीयांश्च कुर्युः ।
दिनकरशशिवीर्याऽधिष्ठितत्र्यंशनाथाः
प्रवरसमनिकृष्टास्तुङ्गह्रासावनूके ॥५॥

सं०—दिनकरशशिवीर्याधिष्ठितत्र्यंशनाद्याः = रविचन्द्रयोरन्यतमवलीग्रहाश्रितद्रेष्काणेशाः, गुरुः, उडुपतिशुक्रौ = चन्द्रसितौ, सूर्यभौमौ, यमज्ञौ= शनिबुधौ, क्रमेण विबुधपितृतिरश्च=देवपितरतिर्यग्लोकश्च नारकीयान्=नरकसम्बन्धिलोकान्, च, कुर्युः। एतदुक्तं भवति, यदि द्रेष्काणेशः गुरुस्तदा देवलोकः, चन्द्रशुक्रयोः सम्बन्धेन पितृलोकः, एवं रविमंगलयोः सम्बन्धेन तिर्यग्लोकस्तथा शनिबुधयोः सम्बन्धेन नरकलोकादागत इति ज्ञेयम्। तत्र तुङ्गह्रासाद्=उच्चनीचस्थितग्रहवशात्, प्रवरसमनिकृष्टाः = उत्तममध्यमाधमा प्राणिनो भवन्ति, एतद्, अनूके=प्राग्जन्मनि, ज्ञेयम् ॥ ५ ॥

हिं०—सूर्य और चन्द्र में जो बली हो वह जिस द्रेष्काण में हो उसका स्वामी यदि गुरु हो तो जातक जन्म से पूर्व देवलोक में था यह जानना चाहिये। इसी तरह चन्द्र-शुक्र से पितरलोक, रवि-मंगल से मर्त्यलोक, और शनि-बुध से नरकलोक समझना चाहिये। किस कोटि का व्यक्ति था इसे जानने के लिये द्रेष्काणेश यदि उच्च का हो तो श्रेष्ठ व्यक्ति, उच्च-नीच के मध्य में हो तो मध्यम व्यक्ति और नीचस्थ हो तो अधम व्यक्ति होता है ॥ ५ ॥

वि०—निर्याणाध्याय के सभी विषय आगमप्रमाण से प्रमाणित हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से मर्त्यलोक से भिन्न पाताललोक नहीं अतः उसका वर्णन नहीं है।

इति लघुजातके निर्याणाध्यायः पञ्चदशः ॥

—०—

अथ नष्टजातकाध्यायः ।

जन्मलग्नादिज्ञानार्थं कलापिण्डसाधनम्—

गोसिंहौ जितुमाष्टमौ क्रियतुले कन्यामृगौ च क्रमात्
संवर्ग्या दशकाष्टसप्तविषयैः शेषाः स्वसंख्यागुणाः ।
जीवारास्फुजिदैन्दवाः प्रथमवच्छेषा ग्रहाः सौम्यव-
द्राशीनां नियतो विधिर्ग्रहयुतैः कार्या च तद्वर्गणा ।। १ ।।

सं०—गोसिंहौ, जितुमाष्टमौ=मिथुनवृश्चिकौ, क्रियतुले, कन्यामृगौ च क्रमात् दशकाष्टसप्तविषयैः=दशाष्टसप्तपञ्चभिः,संवार्याः=गुणनीयाः, शेषाः लग्नगत राशयः स्वसंख्यागुणाः=निजराशिसंख्यांकांकाः गुणकाः, भवन्ति। लग्नगतग्रहाणां गुणकाङ्कं कथयति, तत्र जीवारास्फुजिदैन्दवाः=गुरुकुजशुक्र बुधाः, प्रथमवदर्थात् पूर्वोक्तप्रथमराशिगुणकाङ्कवत्, शेषाः ग्रहाः सौम्यवत्= बुधगुणकाङ्कवत्, एवं राशीनां नियतः विधिः ग्रहयुतैः=विशेषग्रहयोगैः, तद्वर्गणा=तत्तद्ग्रहगुणकाङ्केन गुणनक्रिया, च कार्या ॥ १ ॥

हि०—प्रश्नकालिक लग्नराश्यादि को कला बनाकर यदि वृष और सिंह लग्न हो तो उसे १० से, मिथुन-वृश्चिक में ८ से, मेष-तुला में ७ से और कन्या-मकर में ५ से, शेष अर्थात् कर्क, धनु, कुम्भ, मीन राशि के लग्न में राशि की संख्या से गुणा करे। लग्न में यदि गुरु हो तो १० से, मंगल में ८ से, शुक्र में ७ से और बुध में ५ से तथा शेष रवि, चन्द्र एवं शनि में ५ से उक्त राशि गुणक गुणित लग्न कला पिण्ड को गुणा करे। यदि विशेष ग्रह लग्न में हों तो प्रत्येक ग्रह के गुणांक से अलग-अलग गुणा करना चाहिये। इस तरह स्पष्ट कलापिण्ड होता है ॥ १ ॥

उदाहरण—नष्टजन्माङ्गनिर्माणार्थं प्रश्नकालिक स्पष्ट लग्नराश्यादि=६।२४।१०।१५ है। प्रश्नकुंडली में लग्नस्थ रवि और शुक्र हैं। प्रश्नकालिक कुण्डलीलग्नराश्यादि को
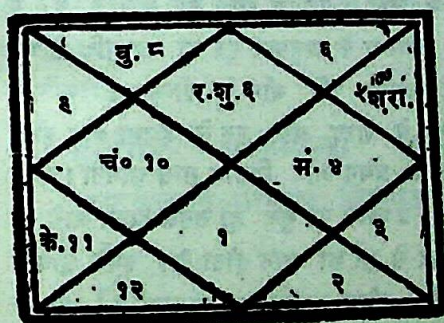
कलात्मक बनाने पर १२२५०।१५ हुआ। लग्न में तुला राशि है अतः उसका गुणकांक ७ से गुणा किया तो ८५७५१।४५ हुआ। अब लग्न में रवि और शुक्र है अतः पहले रवि का गुणकांक ५ से गुणा किया तो ४२८७५८।४५ हुआ। इसे फिर शुक्र के गुणकांक ७ से गुणा करने पर ३००१३११।१५ हुआ। यह प्रश्नकालिक स्पष्टकलापिण्ड हुआ। इसके आधार पर आगे जन्म समय का ज्ञान किया गया है ।।

जन्मनक्षत्रज्ञानम्—

सप्ताहतं त्रिघनभाजितशेषमृक्षं
दत्वाऽथवा नव विशोध्य नवाऽथवा स्यात्।
एवं कलत्रसहजात्मजशत्रुभेभ्यः
प्रष्टुर्वदेदुदयराशिवशेन तेषाम् ॥ २ ॥

सं०—पूर्वानीतकलापिण्डं सप्ताहतं, 'त्रिघनभाजितं=सप्तविंशतिभिर्क्तं, शेषमृक्षं नक्षत्रं स्यात। अथवा नव दत्वा अथवा नव विशोध्य सप्तविंशतिभिर्भाजिते सति नक्षत्रं स्यात्। एवं प्रष्टुः कलत्रसहजात्मजशत्रुभेभ्यः उदयराशिवशेन तेषामृक्षं वदेदिति ॥ २ ॥

हि०—पूर्वसाधित कलापिण्ड को ७ से गुणाकर २७ का भाग देने पर शेष से नक्षत्र जानना चाहिये। अथवा सप्तगुणित कलापिण्ड में ९ जोड़कर अथवा ९ घटाकर २७ का भाग देने पर शेष से नक्षत्र का ज्ञान करना। इसी तरह प्रश्नकर्त्ता के सप्तम भाव पत्नी का लग्न, तृतीय भाव भाई का, पञ्चम भाव पुत्र का और छठा भाव शत्रु का लग्न मानकर उसके आधार पर कलापिण्डादि बनाकर उक्त रीति से उन लोगों के नक्षत्र जाने जायगें ॥ २ ॥

वि०—कोई चर राशि के लग्न में ९ जोड़ना द्विस्वभाव में ९ घटाना और स्थिर में यथावत् रहने देना कहा है। भट्टोत्पल लग्न में प्रथम द्रेष्काण होने से ९ जोड़ना, तृतीय द्रेष्काण में ९ घटाना और द्वितीय में यथावत् रहने देना कहे हैं। यहाँ स्थिति के अनुसार संस्कार करना उचित है। कुछ टीकाकार नक्षत्र न घटने की स्थिति में प्राप्त नक्षत्र में ९ जोड़ना या घटाना लिखते हैं, परन्तु वह संगत नहीं है कारण नक्षत्रवश पक्ष और तिथि के ज्ञान हो जायगें। लग्न में १ द्रेष्काण हो तो लग्नराशिस्थ जन्मकालिक गुरु, २ द्रे० में लग्न से पञ्चम राशि का और ३ द्रे० में लग्न से नवम राशि का गुरु समझकर अवस्था के अनुसार गुरु की चक्रावृत्ति से वर्ष का ज्ञान होता है और लग्नगत या द्रेष्काणगत रवि भौम से ग्रीष्मऋतु, शनि से शिशिर, शुक्र से वसन्त, चन्द्र से वर्षा, बुध से शरद और गुरु से हेमन्त ऋतु होता है। द्रेष्काण के पूर्वापर भाग द्वारा ऋतु के प्रथम और द्वितीय मास जानना। प्रश्न लग्न की नवांश राशि या लग्न से जितने द्रेष्काण पर सूर्य हों उससे इतनी आगे की राशि जन्मलग्न राशि होती है। भुक्त पर से इष्ट का ज्ञान होता है। इनके आधार पर उस वर्ष के पञ्चाङ्ग द्वारा नष्ट-जन्मपत्र बनेगा। इसमें सन्देह व्यर्थ है। अथवा अग्रिम श्लोक द्वारा वर्षादि ज्ञान होंगें।

उदाहरण—कलापिण्ड २००।३।११।२५ को ७ से गुणा करने पर २१००१।७८।

४५ हुआ। इसमें २७ का भाग देने पर शेष १९ होता है अतः अश्विनी से गिनने पर १९ वाँ मूल नक्षत्र हुआ। इसी तरह ९ जोड़कर या घटाकर क्रिया करनी चाहिये।

वर्षर्तुमासादिज्ञानम्—

वर्षर्तुमासतिथयो द्युनिशं ह्युडूनि
वेलोदयर्क्षनवभागविकल्पनाः स्युः।
भूयो दशादिगुणिताः स्वविकल्पभक्ता
वर्षादयो नवकदानविशोधनाभ्याम् ॥३॥

सं०—वर्षर्तुमासतिथयः द्युनिशं हि उडूनि वेलोदयर्क्षनवभागविकल्पनाः भवन्ति। एषामानयनार्थं पूर्वसाधितकलापिण्डं भूयः पुनः दशादिगुणिताः दशाष्ट सप्तपञ्चभिर्गुणितास्ततः नवकदानविशोधनाभ्यां स्वविकल्पभक्ताः=निजनिज-विकल्पेन भक्तास्तदा वर्षादयः स्युरिति ॥ ३ ॥

हि०—वर्ष के विकल्प १२०, ऋतु के ६, मास के १२ पक्ष के २, तिथि के १५, दिन-रात्रि के २, नक्षत्र के २७, इष्ट के दिनमान तथा रात्रिमान लग्नराशि के १२ और नवांश के ९ विकल्प अंक हैं। इनके आनयनार्थ पहले कलापिण्ड को चार जगह रखकर क्रम से १०।८।७।५ इन अंकों से गुणाकर गुणनफल में पूर्वोक्त रीति से ९ जोड़कर या ९ घटाकर उनमें अपने-अपने विकल्पाङ्कों से भाग देने पर शेष के अनुसार वर्ष, ऋतु, मास और तिथि आदि होते हैं। विशेष यह है कि वर्ष, ऋतु, मास और तिथि १० गुणित कलापिण्ड से पक्ष, तिथि ज्ञानार्थ अष्टगुणित कला-पिण्ड से, दिन-रात और नक्षत्र के लिए सप्तगुणित पिण्ड से और इष्टसमय, लग्न, होरा एवं नवांश के लिए पंचगुणित कलापिण्ड से क्रिया होती हैं जो आगे कहे गये हैं ॥ ३ ॥

विशेषः—

विज्ञेया दशकेष्वब्दा ऋतुमासास्तथैव च।
अष्टकेष्वपि मासार्धं तिथयश्च तथा स्मृताः ॥ ४ ॥

सं०—स्पष्टम्।

हि०—दशगुणित कलापिण्ड को वर्षविकल्प १२० से भाग देने पर शेष तुल्य वर्ष, ऋतुविकल्प ६ से भाग देने से शेषतुल्य ऋतु, मासविकल्प १२ से भाग देने से मास होगा। अतः वर्ष, ऋतु और मास के लिये दश गुणकांक होता है। पक्ष

और तिथि के लिये ८ गुणकांक है। कलापिण्ड को ८ से गुणाकर दो जगह रखकर क्रम से प्रथम में पक्षविकल्प २ और द्वितीय में तिथिविकल्प १५ से भाग देकर शेष तुल्य पक्ष और तिथि जानना चाहिये ॥ ४ ॥

अन्यः—

दिवारात्रिप्रसूतिं च नक्षत्रानयनं तथा।
सप्तसङ्ख्येऽपि वर्गे तु नित्यमेवोपलक्षयेत् ॥ ५ ॥

सं०—स्पष्टम्

हिन्दी—दिन और रात्रि का जन्म जानने के लिए तथा नक्षत्र–ज्ञानार्थं कलापिण्ड का गुणकांक ७ सदा समझना चाहिए। अर्थात् कलापिण्ड को ७ से गुणाकर दिन-रात्रि का विकल्प २ से भाग देकर १ शेष में दिन और शून्य में रात्रि समझना। इसी तरह सप्तगुणित कलापिण्ड में नक्षत्रविकल्प २७ से भाग देने पर शेषतुल्य नक्षत्र होता है ॥ ५ ॥

इष्टकालादिज्ञानार्थंविशेषः—

वेलामथ विलग्नं च होरामंशकमेव च।
पञ्चकेषु विजानीयान्नष्टजातकसिद्धये ॥ ६ ॥

सं०—स्पष्टम्

हि०—इष्टकाल, जन्मलग्न, होरा और नवांशादि के ज्ञानार्थं ५ गुणकाङ्क है। भाव यह है कि कलापिण्ड को ५ से गुणाकर दिन के जन्म में दिनमान से और रात्रि के जन्म में रात्रिमान से भाग देने पर शेषतुल्य इष्टकाल होता है। इसी तरह पञ्चगुणित कलापिण्ड को लग्नविकल्प १२ से भाग देने पर शेषतुल्य लग्न, एवं पञ्चगुणित कलापिण्ड को होराविकल्प २ से भाग देने पर १ में प्रथम और शून्य में द्वितीय होरा और नवांश के लिए ९ का भाग देकर शेषतुल्य नवांश होता है। अथवा इष्टकाल ज्ञात होने पर उसके आधार पर लग्नराश्यादि बनाकर लग्न के होरा आदि वर्ग के ज्ञान होंगे। इस तरह नष्टजातक अर्थात् नष्ट-जन्म-पत्र बनाना चाहिए॥६॥

विशेष—पञ्चगुणित कलापिण्ड को रात्रिमान से भाग देने पर रात्रिगत इष्टकाल होता है। उसमें दिनमान जोड़ने पर उदय से जन्मकाल पर्यन्त का इष्टकाल होगा। प्रश्नकर्ता को जो विषय ज्ञात हो वह वैसा ही रखकर अज्ञात विषय के लिए उक्तविधि का प्रयोग करना उचित है। इस विषय में ज्योतिषी अपने अनुभव से कार्य करें अन्यथा चेष्टा विफल होगी। इन सभी की उपस्थिति में आगम आप्तवचन ही

प्रमाण हैं। वर्षज्ञान जहाँ ठीक से न हो वहाँ उमर के आधार पर अनुमान द्वारा वर्ष का निश्चय करना उचित है। नष्टजातक से केवल वर्ष, मास, पक्ष, तिथि और समय निकाल कर पञ्चाङ्ग के आधार पर अन्य विषयों का ज्ञान सुलभ रीति से होगा इस तरह का उदाहरण नीचे लिखा जाता है।

उदाहरण—पूर्वसाधित कलापिण्ड ३००१३।१।१५ है। वर्षादि ज्ञानार्थं इसको १० से गुणा किया तो ३००१३११२।३० हुआ। प्रश्न लग्न में तृतीय द्रेष्काण है अतः इसमें ९ घटाकर शेष में १२० का भाग दिया तो शेष २३ आया यह वर्ष हुआ। इसे प्रश्नकालिक संवत् २०३६ में घटा दिया तो जन्म संवत् २०१३ हुआ। मास ज्ञानार्थं संस्कृत कलापिण्ड ३००१३१०३ में १२ का भाग देने पर शेष ११ बचा अतः फाल्गुन मास हुआ। पक्षज्ञानार्थं कलापिण्ड को ८ से गुणाकर ९ घटाकर शेष २४०१०४८१ में २ का भाग देने पर शेष १ से कृष्ण पक्ष हुआ। उसी में १५ का भाग दिया तो शेष ११ बचा, अतः एकादशी तिथि हुई। दिन या रात्रि ज्ञानार्थं कलापिण्ड को ७ से गुणाकर उसमें ९ घटाकर शेष २१००९१६९ में २ का भाग दिया तो शेष १ से दिन रवि हुआ। इष्टज्ञानार्थं कलापिण्ड को ५ से गुणाकर उसमें ९ घटाने पर शेष १५००६५४७ में दिनमान २८ का भाग देने पर शेष ३ दण्ड और १५ पल इष्टकाल हुआ। बाद में संवत् २०१३ का पञ्चाङ्ग द्वारा जन्मकुण्डली बनाने पर प्रश्नकर्ता की जन्मकुण्डली हुई। विवरण निम्न है—

नष्ट-जन्मलग्नकुण्डली—
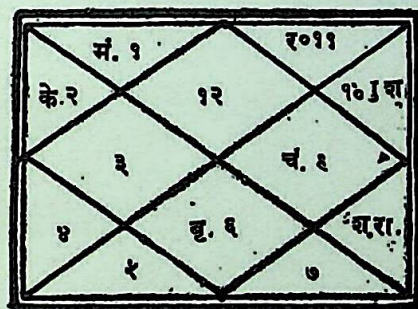
शुभ संवत् २०१३ शकाब्दाः १८७८ दिनाङ्काः २५।२।१९५७ ई० फाल्गुन कृष्णैकादशी तिथि दं० १७। ४६ पूर्वाषाढ़नक्षत्र दं-२४। ३८ व्यतीपातयोग दं-५४। ५२ बालवकरण दं १७।४६ चन्द्रवासरे दिनमानं २७। २२ तत्रेष्टम्=३।१५ लग्नं ११।९ भयातं ४३।४ भभोगः ६४।२७ सूर्यः १०।१२।५८।३३॥

इति वराहमिहिराचार्यकृते लघुजातके नष्टजातकाध्यायः षोडशः।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः॥

उपसंहारः

मिथिलादेशमध्यस्थ-हिरणी-ग्रामवासिना ।
वैद्यनाथशिवक्षेत्रे छात्रान् पाठयता मया ॥
षडानलनमोनेत्रसम्मिते वैक्रमाब्दके ।
कार्तिके धवले पक्षे पूर्णायां रविवासरे ॥
वराहरचितस्यास्य गूढग्रन्थिविमोचिनी ।
कृता तत्त्वप्रभाटीका विदुषां मोदवर्द्धिनी ॥

इति मिथिलादेशमध्यस्थ-दरभङ्गामण्डलान्तर्गत-हिरणीग्रामनिवासि-ज्योतिष-गणित-फलिताचार्य-तीर्थ-वेदान्त-साहित्य-सांख्ययोगाचार्यादि-पदवीधारिणा वैद्यनाथधामस्थ-वैद्यनाथकमलकुमारी-संस्कृतविद्यालय-प्रधानाध्यापकेन पं० श्री लषणलाल झा शर्मणा विरचितया सयुक्तिक-सोदाहरण-सोपपत्ति - तत्त्वप्रभा - संस्कृत-हिन्दी-टीकया सहितं लघुजातकं समाप्तम् ।

॥ श्री वैद्यनाथार्पणमस्तु ॥

—।०:—

हमारे प्रमुख ग्रन्थ

अहिबलचक्रम्। हिन्दी टीका सहित। डॉ० सत्येन्द्र मिश्र

करणकूतूहलम्। भास्कराचार्य विरचित। सुमतिं हर्षकृत 'गणककुमुदकौमुदी', सुधाकर द्विवेदी प्रणीत 'वासनाविभूषण' संस्कृत टीका द्वयविभूषितं 'शिवमती' हिन्दी भाषा अनुवाद सहित। हिन्दी टीकाकार—डॉ० सत्येन्द्र मिश्र

गौरीजातकम्। हिन्दी टीका सहित। टीकाकार—डॉ० सत्येन्द्र मिश्र

ग्रहगति का क्रमिक विकास। श्रीचन्द्र पांडेय

ग्रहगोचरविचारः। 'प्रकाशिका' भाषा टीका सहित। सम्पादकोऽनुवादकश्च—देवीप्रसाद त्रिपाठी

ग्रहलाघवम्। श्रीगणेशदैवज्ञविरचितम्। 'मल्लारि' संस्कृत व्याख्या स्वोपज्ञया 'चन्द्रिका' नाम्नी हिन्दी व्याख्या च समलङ्कृत्या। सम्पादको व्याख्याकारश्च—प्रो० रामचन्द्र पाण्डेय

चमत्कारचिन्तामणिः। श्री नारायणभट्टविरचितम्। 'भावबोधिनी' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेता। व्या०—पं० हीरालाल मिश्र

जातकक्रोडम्। श्रीकृष्णदत्तविरचितम्। 'प्रज्ञावर्धिनी' हिन्दी टीका सहित

जातकालङ्कारः। गणेशदैवज्ञकृतः। संयुक्तिक सोदाहरण 'तत्त्वप्रकाशिका' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहितम्। व्याख्याकार—पं० लषणलाल झा

जैमिनीसूत्रम्। 'विमला' संस्कृत-हिन्दी टीका। पं० अच्युतानन्द झा कृत

ताजक-विज्ञान (वर्षफलित-विज्ञान)। श्री सुदर्शनाचार्य शास्त्री

तिथिचिन्तामणिः। गणेशदेवप्रणीतः। विजयलक्ष्मी भाषा टीका सहितः। पण्डित मातृकाप्रसाद पांडेय

तेजी-मंदी-विज्ञान। श्रीसुदर्शनाचार्य शास्त्री, ज्योतिपरत्न, कर्मकाण्डविशारद

दैवज्ञकामधेनुः। म० म० अनवमर्शीसंघराजवरेण संकलिता। सम्पादक—श्री सीताराम शास्त्री उपाध्याय।

नाह्निदत्तपञ्चविंशतिका। सविमर्श 'इन्दुमती' हिन्दी व्याख्योपेता। सं०—पण्डित रामचन्द्र झा

पद्मकोशः। दैवज्ञ भगवानदत्तविरचितः। 'बालबोधिनी' हिन्दी व्याख्या

परवलयक्षेत्रम्। पण्डित मुरलीधर ठक्कुर

बीजगणितम्। सविमर्श सोदाहरण 'वासना' संस्कृत 'सुधा' हिन्दी व्याख्योपेतम्।

फोन : ३३३४५८

अपरञ्च पुस्तक-प्राप्तिस्थानम्

(सहयोगी संस्था)

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के. ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन, गोलघर (मैदागिन) के पास

पो. बा. नं. १००८, वाराणसी-२२१ ००१ (भारत)

E-mail : cssoffice@satyam.net.in